मूल्य : 20/-

पंजी. संख्या : 153/2016-17

वर्ष : २

सितम्बर २०१७, विक्रमी सम्वत् २०७४
सृष्टि सम्वत् १९६०८५३११८, दयानन्दाब्द १९४

अंक : १५

ओ३म्

।। कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।।

सत्य और ज्ञान से भरपूर आर्यसमाज नोएडा का मासिक मुखपत्र

विश्ववारा संस्कृति

मानवीय जीवन मूल्यों की संरक्षक पत्रिका

"सा प्रथमा संस्कृतिविश्ववारा"

नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्।।

ईश्वर का व्यापक ज्ञानस्वरूप पूज्य और सहज स्वभाव जानकर हम उसकी उपासना करें तथा जीवन में सदा सत्य का आचरण करें।

युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती
(1824-1883)

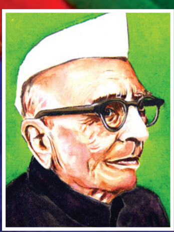
पं गंगा प्रसाद उपाध्याय
(जन्म : 6 सित.)

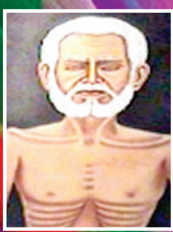
स्वामी विरजानंद
(स्मृति दिवस : 14 सित.)

महाशय राजपाल
(जन्म : 27 सित.)

देशभक्त सरदार भगत सिंह
(जन्म : 28 सित.)

श्रावणी उपाकर्म के अवसर पर मुख्य अतिथि माननीय पंकज सिंह विधायक नोएडा दीप प्रज्जवलन करते हुए। साथ में अन्य पदाधिकारी गण।

आर्य समाज के अधिकारियों के साथ माननीय श्री पंकज सिंह विधायक नोएडा।

माननीय विधायक श्री पंकज सिंह को स्मृति चिन्ह से सम्मानित करते नोएडा आर्य समाज के अधिकारीगण।

श्री आनंद चौहान, आर्य कै. अशोक गुलाटी, श्री रविन्द्र सेठ व आचार्य जयेंद्र कुमार कार्यक्रम के अवसर पर।

ओ३म्

।। कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।।

विश्ववारा संस्कृति

मानवीय जीवन मूल्यों की संरक्षक पत्रिका

संरक्षक
श्री आनंद चौहान, श्री सुधीर सिंघल
श्री रविन्द्र सेठ 'प्रधान'

प्रबंध संपादक
महामंत्री आर्य कै. अशोक गुलाटी

प्रधान संपादक
आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार

व्यवस्थापक
ओमकार शास्त्री

प्रकाशक और मुद्रक
स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं प्रधान संपादक डॉ. जयेन्द्र कुमार द्वारा वत्स ऑफसेट, मुद्दा हाऊस, सी-ब्लॉक, बारात घर, चौड़ा रघुनाथपुर, सेक्टर-22, नोएडा से मुद्रित एवं आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा, गौतमबुद्धनगर से प्रकाशित किया।

Title Code : UPMU-200652

घोषणा पत्र संख्या : 153/06.06/2016-17

मूल्य

एक प्रति : 20/-	वार्षिक : 250/-
पांच वर्ष : 1100/-	आजीवन : 2500/-

विदेश में वार्षिक शुल्क : 3100/-

अनुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	पृष्ठ
1.	संपादकीय	2
2.	गीता में प्रतिपादित कर्मयोग	3
3.	विश्वानि देव सवितः	4-5
4.	जगद् गुरु स्वामी विरजानन्द	6-7
5.	महान क्रांतिकारी सरदार भगत सिंह...	8-9
6.	सृष्टि उत्पत्ति विषयक वैदिक सिद्धांत...	10-11
7.	आर्य समाज का सातवां नियम...	12-13
8.	प्रभु की रचना को देखो	14-15
9.	अतिथि यज्ञ के होता बनें	16
10.	अध्यात्मवाद...	17
11.	राष्ट्र का आधुनिक परिवेश...	18
12.	वेद और धर्म...	20-21

पाठकवृंद : कृपया स्वयं समाज एवं राष्ट्र के उत्थान के लिए 'विश्ववारा संस्कृति' के आजीवन सदस्य बनकर जीवन पथ को पुष्पित, प्रफुल्लित और प्रमुदित करें। अपका चित्र पत्रिका में प्रकाशित होगा। आपके बहुमूल्य सुझावों का हम स्वागत करते हैं।

लेखकवृंद से अनुरोध है कि रचना मौलिक एवं अप्रकाशित हो, रचना का लेखन स्पष्ट और सुपाठ्य हो। दो प्रतियां उस रचनाकार को भेज दी जाएगी, जिनकी रचना प्रकाशित हुई है।

विज्ञापन दर

पिछला कवर पृष्ठ	:	5100 रुपये
कवर पृष्ठ नं.-2	:	3100 रुपये
कवर पृष्ठ नं.-3	:	2500 रुपये
पूरा पृष्ठ अंदर	:	1000 रुपये
आधा पृष्ठ अंदर	:	600 रुपये

'विश्ववारा संस्कृति' में सभी पद अवैतनिक हैं। प्रकाशित विचारों से संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। सभी विवादों का न्याय क्षेत्र गौतमबुद्धनगर होगा।

संपादकीय कार्यालय

आर्य समाज, बी-69,
सेक्टर-33, नोएडा- 201301
गौतमबुद्धनगर, (उ.प्र.)
दूरभाष : 0120-2505731, 4206693, 9871798221

Web : www.aryasamajnoida.org, E-mail : info.aryasamajnoida33@gmail.com

संपादकीय...

।।ओ३म्।।

श्रीराम के नाम को कलंकित करते रावण वेषधारी तीन राम
आशाराम-रामपाल-राम रहीम

भारतीय संस्कृति के सबसे बड़े पोषक एवं ध्वज वाहक मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम हैं। यदि मर्यादा की परिभाषा, धर्म की परिभाषा, न्याय की परिभाषा, सदाचार की परिभाषा को एक शब्द से परिभाषित किया जा सकता है–वह शब्द है राम (रामो विग्रहवान धर्मो) इस देश में लोगों ने राम को सदा अपने हृदय के सिहांसन पर विराजमान किया है। नमस्ते की जगह पर भी देशों के लोगों ने राम–राम कहकर अभिवादन किया।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की पितृभक्ति, राष्ट्रभक्ति, भ्रातृप्रेम, जन सेवा की आदर्श चर्चा सदियों से जन–जन के मध्य होती है। श्रीराम कथा का श्रवण कर धर्म के आदर्श पथ पर चलने से, जनमानस उत्प्रेरित होता है तथा उसके जीवन में नैतिक मूल्यों का उन्नयन होता है। इस देश के काव्यों में, ग्रन्थों में, कविताओं में, गीतों में राम बसते ही नहीं पूजे जाते हैं।

किन्तु देश का दुर्भाग्य देखिये आशाराम, रामपाल, राम रहीम इन तीनों के नाम में भी राम आता है लेकिन इन्होंने इस देश के लोगों को दुनिया के सामने शर्मसार कर दिया है। इनकी इन्हीं हरकतों के कारण लोगों का विश्वास धार्मिक गुरुओं, साधु–सन्तों से उठता जा रहा है। इन स्तरहीन, चरित्रहीन लोगों ने साधुओं के नाम को कलंकित कर दिया है।

इस देश में कहा जाता है–

चन्दनं शीतलं लोके चन्दनादपि चन्द्रमा।
चन्द्र चन्दनयोर्मध्ये शीतला साधु संगतिः।।

संसार के रोग, शोक, तनाव से पीड़ित व्यक्ति को साधु की संगत चन्दन और चन्द्रमा की तरह शीतलता प्रदान करती है। शास्त्र का तो यहां तक कहना है कि–

''साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थ भूता हि साधवः''

साधु तो स्वयं तीर्थरूप होता है उसके दर्शन से पुण्य लाभ मिलता है किन्तु इन तीनों वहशियों ने साधु की गरिमा को कम किया है। ऐसे लोगों के विषय में महर्षि दयानन्द ने 1875 में आर्यसमाज की स्थापना कर लोगों को समझाने का प्रयास किया तथा अंधविश्वास पाखंड से गुरुडम फैलाने वाले लोगों को पोप की संज्ञा दी। मैं लोगों से अपील करता हूं कि आर्यसमाज से जुड़ें, सत्य, असत्य, धर्म, अधर्म, न्याय, अन्याय का ज्ञान प्राप्त कर अपने जीवन को सही दिशा में ले चलें।

■ आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार

यदि मर्यादा की परिभाषा, धर्म की परिभाषा, न्याय की परिभाषा, सदाचार की परिभाषा को एक शब्द से परिभाषित किया जा सकता है-वह शब्द है राम (रामो विग्रहवान धर्मो) इस देश में लोगों ने राम को सदा अपने हृदय के सिहांसन पर विराजमान किया है। नमस्ते की जगह पर भी देशों के लोगों ने राम-राम कहकर अभिवादन किया। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की पितृभक्ति, राष्ट्रभक्ति, भ्रातृप्रेम जन सेवा की आदर्श चर्चा सदियों से जन-जन के मध्य होती है। श्रीराम कथा का श्रवण कर धर्म के आदर्श पथ पर चलने से, जनमानस उत्प्रेरित होता है तथा उसके जीवन में नैतिक मूल्यों का उन्नयन होता है। इस देश के काव्यों में, ग्रन्थों में, कविताओं में, गीतों में राम बसते ही नहीं पूजे जाते हैं। किन्तु देश का दुर्भाग्य देखिये आशाराम, रामपाल, राम रहीम इन तीनों के नाम में भी राम आता है लेकिन इन्होंने इस देश के लोगों को दुनिया के सामने शर्मसार कर दिया है। इनकी इन्हीं हरकतों के कारण लोगों का विश्वास धार्मिक गुरुओं, साधु-सन्तों से उठता जा रहा है। इन स्तरहीन, चरित्रहीन लोगों ने साधुओं के नाम को कलंकित कर दिया है।

गीता में प्रतिपादित कर्मयोग

कर्मयोग का अर्थ है- फल में आसक्ति का त्याग। कर्म के विषय में तीन विचार हो सकते हैं-1. फल का त्याग करना हो तो कर्म ही क्यों करो। 2. कर्म करो और फल पर अपना अधिकार समझो। 3. कर्म करो परन्तु फल पर अपना अधिकार मत समझो।

पहला दृष्टिकोण तमोगुणी है, दूसरा रजोगुणी, तीसरा सत्व गुणी है। तमोगुणी कहता है कि फल मिलेगा तो कर्म करूंगा नहीं तो कर्म ही नहीं करूंगा। रजोगुणी कहता है कर्म तो अवश्य करूंगा परन्तु फल पर अधिकार जरूर रखूंगा। सत्व गुणी कहता है कि कर्म करूंगा परन्तु फल पर अपना अधिकार नहीं रखूंगा। सत्व गुणी व्यक्ति का दृष्टिकोण ही कर्मयोग का दृष्टिकोण है। इससे पहले दोनों दृष्टियों का समन्वय हो जाता है। इसमें तमोगुणी की तरह कर्म छोड़ा भी नहीं जाता। रजोगुणी की तरह फल पर अधिकार रखा भी नहीं जाता। कर्मयोग के इसी मार्ग को निष्काम कर्म कहते हैं।

गीता मानव को मानव धर्म के लिये नहीं दिव्य कर्म के लिये प्रेरित करती है। जब मनुष्य दिव्य कर्म करने लगता है तब वह स्वयं कर्म नहीं कर रहा होता। मनुष्य को माध्यम बनाकर भगवान ही कर्म कर रहा होता है। मनुष्य तो निमित्त मात्र ही होता है। कर्म की आसक्ति छोड़कर यज्ञ की भावना से किये गये कर्म से कर्म का बन्धन नहीं पड़ता। कर्म की उत्पत्ति ज्ञान से, ज्ञान की उत्पत्ति अक्षर अविनाशी परमेश्वर से होती है।

मनुष्य सोचता है कि वह स्वयं कर्म कर रहा है इसलिये तो वह फल की आकांक्षा करता है। फल में आसक्त रहता है। निष्काम कर्म की बात उसकी समझ में ही नहीं आती। परन्तु तथ्य क्या है, मनुष्य स्वयं कर्म नहीं करता, अगर वह समझ जाय कि वह तो कर्म करता ही नहीं है, तब कर्मफल में आसक्ति अपने आप दूर हो जाय। अज्ञानी व्यक्ति के लिये यह सम्भव नहीं है कि वह कर्म में आसक्ति छोड़ दे। वह कर्म में आसक्ति छोड़ेगा तो कर्म ही छोड़ देगा। इसलिये ज्ञानी व्यक्ति को चाहिए कि स्वयं तो कर्म में अनासक्त रहकर काम करे परन्तु अज्ञानी व्यक्ति को भले ही वह अनासक्त भाव से कर्म न कर सके, आसक्त भाव से ही कर्म करे परन्तु उसे कर्म करने की प्रेरणा देता रहे। निष्काम भावना का अर्थ है स्वार्थ का त्याग, कामना का त्याग, इच्छा का त्याग, दूसरों के लिये जीना-मरना। यज्ञ का भी योगेश्वर श्री कृष्ण ने यही अर्थ किया है। गीता ने कहा कि यज्ञ की, त्याग की, निस्वार्थ की, निष्कामता की भावना तो सृष्टि के बीज में पड़ी है। प्रजापति ने सृष्टि की रचना करते हुये यज्ञ के साथ ही तो इसे सृजा। यज्ञ की भावना अर्थात त्याग का पुट देकर कह दिया कि सृष्टि का चक्र इसी भावना के साथ चलाओगे, इतना ही नहीं जैसे यज्ञ में जो यज्ञ शेष रह जाता है वही लेकर यजमान अपने को धन्य समझता है, इसी तरह सभी कर्मो को भगवान के चरणों में सौंपकर जो कुछ कर्म फल मिले उसे यज्ञ शेष समझकर स्वीकार करें। ज्ञानयोग और कर्मयोग ये दोनों निःश्रेयस अर्थात परम कल्याण को देने वाले हैं। परन्तु इन दोनों में से कर्म को त्याग देने वाले ज्ञान योग की अपेक्षा कर्मयोग निष्काम कर्म अधिक अच्छा है।

जो व्यक्ति कर्म योगी है, निष्काम कर्म करने वाला है उसे ज्ञान योगी समझो क्योंकि जो किसी से घृणा नहीं करता, किसी वस्तु की कामना नहीं करता, द्वन्द्वों से मुक्त है, उसमें सदा ज्ञान मार्ग की, कल्याण मार्ग की भावना भरी होती है, वह कर्मो के बन्धन से सरलता से छूट जाता है। मुख्य उद्देश्य तो कर्म के बन्धन से बचना है। वह कर्म न करके ही या कर्म करके निष्काम भावना से ही कर्म न करना तो सम्भव नहीं है, कर्म तो करना ही पड़ता है। इसलिये गीता का निष्कर्ष यह है कि जब कर्म से बचा नहीं जा सकता तो कर्म के बन्धन से बचना भी तब एक ही मार्ग रह जाता है, वह मार्ग है निष्काम कर्म, ऐसा मार्ग जिसमें कर्म किया भी जाता है परन्तु सांख्य मार्ग का उद्देश्य है कर्म के बन्धन से बचना। इसलिये कर्म योग ज्ञान योग से श्रेष्ठ है। अतः निष्काम करते हुये अपना जीवन सुखमय व सफल बनाने का प्रयास मनुष्य को करना चाहिये। यही जीवन का उद्देश्य है। ००

प्रबंध संपादक
महामंत्री आर्य कै. अशोक गुलाटी

गीता मानव को मानव धर्म के लिये नहीं दिव्य कर्म के लिये प्रेरित करती है। जब मनुष्य दिव्य कर्म करने लगता है तब वह स्वयं कर्म नहीं कर रहा होता। मनुष्य को माध्यम बनाकर भगवान ही कर्म कर रहा होता है। मनुष्य तो निमित्त मात्र ही होता है। कर्म की आसक्ति छोड़कर यज्ञ की भावना से किये गये कर्म से कर्म का बन्धन नहीं पड़ता। कर्म की उत्पत्ति ज्ञान से, ज्ञान की उत्पत्ति अक्षर अविनाशी परमेश्वर से होती है। मनुष्य सोचता है कि वह स्वयं कर्म कर रहा है इसलिये तो वह फल की आकांक्षा करता है। फल में आसक्त रहता है। निष्काम कर्म की बात उसकी समझ में नहीं आती। परन्तु तथ्य क्या है, मनुष्य स्वयं कर्म नहीं करता, अगर वह समझ जाय कि वह तो कर्म करता ही नहीं है, तब कर्मफल में आसक्ति अपने आप दूर हो जाय। अज्ञानी व्यक्ति के लिये यह सम्भव नहीं है कि वह कर्म में आसक्ति छोड़ दे। वह कर्म में आसक्ति छोड़ेगा तो कर्म ही छोड़ देगा। इसलिये ज्ञानी व्यक्ति को चाहिए कि स्वयं तो कर्म में अनासक्त रहकर काम करे परन्तु अज्ञानी व्यक्ति को भले ही वह अनासक्त भाव से कर्म न कर सके, आसक्त भाव से ही कर्म करे परन्तु उसे कर्म करने की प्रेरणा देता रहे।

ओ३म्

विश्वानि देव सवितः

इस अंक से ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना के मंत्रों की सरल पूर्ण व्याख्या वैदिक विद्वान स्व. प्रो. उमाकान्त उपाध्याय द्वारा लिखित आपकी सेवा में प्रस्तुत की जा रही है, मनन चिन्तन कर जीवन सफल करें।

- प्रबंध संपादक

प्रो. उमाकान्त उपाध्याय

यह शुद्ध प्रार्थनामूलक मंत्र है। इस मंत्र में प्रभु से केवल प्रार्थना की गई है। यह मंत्र ऋषि का अतिप्रिय मंत्र है। स्वामी जी ने अनेक स्थलों पर कार्य आरम्भ करते हुए इस मंत्र से प्रार्थना की है। वेदभाष्य लिखते समय, अनेक जगह अध्यायों के भाष्य के आरम्भ में ऋषि ने इस मंत्र से परमेश्वर की प्रार्थना की है।

यह मंत्र अपनी भावनाओं में विश्वजनीन (Universal) प्रार्थना है। यह परम सैक्यूलर (Secular) मतपन्थ सम्प्रदाय, हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, सिख, शैव, शाक्त, वैष्णव, सबसे निरपेक्ष प्रार्थना है। इसमें किसी उपास्य देव, जिसमें हम प्रार्थना कर रहे हैं, उसका नाम आदि कुछ नहीं है। न शिव, न विष्णु, न काली, न दुर्गा, न राम, न कृष्ण, न ईसा, न मुहम्मद, न लार्ड, न गॉड, न खुदा, न अल्लाह। इसमें कोई साम्प्रदायिक संबोधन नहीं है। इस मंत्र में भक्त उपासक, अपने उपास्य को 'सविता' शब्द से संबोधित कर रहा है। सविता का अर्थ है उत्पादक, पैदा करने वाला, माता-पिता। प्र+सविता= प्रसविता; प्रसव, प्रसूता, सभी शब्द यहीं से बनते हैं। जो भक्त प्रार्थना करता है, चाहे हिंदू हो या मुसलमान या ईसाई या और कोई और, परमेश्वर को माता-पिता सभी मानते हैं। सो यह मंत्र पन्थ सम्प्रदाय-मत-निरपेक्ष है, विश्वजनीन है।

मंत्र का पाठ निम्न प्रकार है-

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न आसुव।। यजु. ३०-६

मंत्र को समझने के लिए निम्न खंडों में विभाजित कर लेते हैं।

१. (हे) देव सवितः (यह संबोधन है)। २. विश्वानि दुरितानि परासुव। ३. यद् भद्रं तन्न आसुव।

प्रथम खंड है- १. देव सवित : हे मेरे सवितः, प्रसवितः, हमें उत्पन्न करने वाले, हमें प्रेरणा देने वाले प्रभो! तूने हमें उत्पन्न किया है, सो हमारी प्रार्थना सुनो।

इस संबोधन में भी एक विचित्र सौन्दर्य है। याचना करने की, मांगने की, अधिकारपूर्वक मांगने की, हठपूर्वक मांगने की, छैला पड़ने की, सर्वोत्तम जगह मां होती है। और मां से थोड़ा ही कम पिता का भी स्थान है।

माता-पिता की गोद, उनका दरबार ऐसी जगह है जहां से शिशु को, बालक को निराश नहीं होना पड़ता। यदि मां के पास वह वस्तु हो और बच्चे के लिए हानिकारक न हो तो बच्चे को अवश्य मिल जायगी। बच्चा लड्डू मांग रहा है हो और मां के पास लड्डू है ही नहीं, अथवा मां के पास लड्डू तो है किंतु बच्चे को ज्वर हो तो लड्डू नहीं मिलेगा, मिलना भी नहीं चाहिए। याचना-प्रार्थना की ये दोनों शर्तें ध्यान देने योग्य है। एक शर्त तो यह हुई कि दाता के पास याचित वस्तु उपस्थित हो और दूसरी शर्त यह है कि याचक या प्रार्थी याचित वस्तु पाने का पात्र हो।

प्रभु के पास देने को सब कुछ है, प्रार्थी को सुपात्र बनने की आवश्यकता है। शिशु दूसरी तीसरी कक्षा का हो और पुस्तकें मांगे एमए की तो दाता को नहीं देनी चाहिए। पात्रता हीन की प्रार्थना पूर्ण होनी भी नहीं चाहिए। हमारी प्रार्थना का अति महत्वपूर्ण अंग यह है कि हम प्रार्थित वस्तु-इष्ट प्राप्त करने के पात्र बनें। याचना सबसे करनी भी नहीं चाहिए। याचना के संबंध में बड़ी अच्छी अन्योक्ति है-'रे रे चातक सावधान

परमपिता परमेश्वर देव हैं, समग्र ऐश्वर्ययुक्त हैं। एक ध्यान देने योग्य बात यह है कि ऐश्वर्य, ईश्वरभाव, ईश्वरत्व देव रूप में ही आता है। यास्क ऋषि देव का निरुक्त लिखते हैं- 'देवः दानात्, द्योतनात्, द्युःस्थाने भवतीति वा।' पिता का तो स्वभाव ही है देने का। अतः याचना करने में कोई असुविधा भी नहीं है। देव का वैयाकरण, व्युत्पत्तिगम्य अर्थ है, 'दीव्यति सा देवः।' अब देव सवितः का सौन्दर्य अनुभव कीजिए। एक तो सविता-पिता, उस पर देने को तत्पर। फिर देव सविता को छोड़कर अन्य किसी से क्यों मांगता? क्या सुंदर भाव है- 'तेरे दर को छोड़कर, किस दर जाऊं मैं? सुनता मेरी कौन है, किसे सुनाऊं मैं।। तू है नाथ वरों का दाता, तुझसे सब वर पाते हैं। छींटा दे दो ज्ञान का, होश में आऊं मैं।। एक तो अपना सविता, उत्पादक, जिससे दाय भाग तक ले लेना संतान का अधिकार होता है। किंतु अधिकार के साथ तो कर्तव्य भी जुड़ जाता है। मैं देव संतान हूं तो मुझे भी देव रूप ही बनना चाहिए। जब हम भगवान को पिता होने का वास्ता देते हैं और हम उनके पुत्र, पुत्री होने का दावा करते हैं तो हम में भगवान के गुण रूप तो आने चाहिए। आखिरकार संतान माता-पिता पर पड़ते हैं, रंग रूप में कुछ समता, शील स्वभाव में कुछ सरूपता तो आनी ही चाहिए।

मनसा, मित्र! क्षणं श्रूयताम्। अभोदा बहवो वसन्ति गगने, सर्वेऽपि नैतादृशाः।।

केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां, गर्जन्ति केचिन्मुधा। यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो, मा ब्रूहि दीनं वचः।।

चातक प्यासा है। प्यास से व्याकुल होकर याचना करने के लिए घर से निकल कर बादलों के पास जाना चाहता है। चातक का कोई अनुभवी मित्र उसे सावधान करता है कि तुम अभावग्रस्त हो, अपनी उलझनों में पड़कर जिस किसी से याचना मत करना। सभी बादल जलदान नहीं करते। कोई-कोई केवल गर्जते हैं, अभिमान करते हैं, हैकड़ी दिखाते हैं, वर्षा नहीं करते। कुछ ही बादल वर्षा करते हैं, पृथ्वी सींचते हैं और संसार को हरा भरा कर देते हैं। याच्मामोघा वरमधिगुणेनाधमे लब्धकामा।

परमात्मा गर्जने वाले दाता नहीं है। जब मनुष्य लेने का पात्र बन जाता है तो प्रभु उसे स्वयं ही अपेक्षित वस्तु, अपेक्षित साधन सुविधाएं दे देते हैं।

यहां सविता का एक विशेषण है देव। हमारा सविता-उत्पन्न करने वाला, प्रेरणा देने वाला स्वयं देव है। ऋषि अर्थ करते हैं, देव शुद्ध स्वरूप और सब सुखों के दाता परमेश्वर।

परमपिता परमेश्वर देव हैं, समग्र ऐश्वर्ययुक्त हैं। एक ध्यान देने योग्य बात यह है कि ऐश्वर्य, ईश्वरभाव, ईश्वरत्व देव रूप में ही आता है। यास्क ऋषि देव का निरुक्त लिखते हैं- 'देव: दानात्, द्योतनात्, द्यु:स्थाने भवतीति वा।' पिता का तो स्वभाव ही है देने का। अत: याचना करने में कोई असुविधा भी नहीं है। देव का वैयाकरण, व्युत्पत्तिगम्य अर्थ है, 'दीव्यति सा देव:।'

अब देव सवित: का सौन्दर्य अनुभव कीजिए। एक तो सविता-पिता, उस पर देने को तत्पर। फिर देव सविता को छोड़कर अन्य किसी से क्यों मांगता? क्या सुंदर भाव है- **'तेरे दर को छोड़कर, किस दर जाऊं मैं? सुनता मेरी कौन है, किसे सुनाऊं मैं।।**

तू है नाथ वरों का दाता, तुझसे सब वर पाते हैं। छींटा दे दो ज्ञान का, होश में आऊं मैं।।

एक तो अपना सविता, उत्पादक, जिससे दाय भाग तक ले लेना संतान का अधिकार होता है। किंतु अधिकार के साथ तो कर्तव्य भी जुड़ जाता है। मैं देव संतान हूं तो मुझे भी देव रूप ही बनना चाहिए। जब हम भगवान को पिता होने का वास्ता देते हैं और हम उनके पुत्र, पुत्री होने का दावा करते हैं तो हम में भगवान के गुण रूप तो आने चाहिए। आखिरकार संतान माता-पिता पर पड़ते हैं, रंग रूप में कुछ समता, शील स्वभाव में कुछ सरूपता तो आनी ही चाहिए। भक्त की एक उलझन है-

'यह उलझन किस विधि सुलझाऊं?
सब जग पूछे पिता कौन है? कैसे नाम बताऊं ?
नाम लिए बिनु काम चलै ना, नाम लेत सकुचाऊं।।
ज्योतिरूप है नाम तुम्हारा, दरपन जौ लख पाऊं।
कारिख रूप देख अपने को, आंचल में छिप जाऊं।।
द्यावा पृथ्वी को तुम धारे, क्या तुव पुत्र कहाऊं।
मुझसे अपना आप न संभले, यही देख शरमाऊं।।

आचरण, विचार, चरित्र आदि को सुधारकर हम अपने पितृदेव, परमदेव, परमात्म देव के दरबार में हाजिर होकर, अपनी पात्रता की उपलब्धि करके पैतृक दाय मांगने का अधिकारी बन सकते हैं-

'तात! पैतृक दाय दो, निज शील सिखलाओ मुझे। प्रणत हूं मैं इन पदों में, मार्ग दिखलाओं मुझे।। असत् से सत् में, तिमिर से ज्योति में लाओ मुझे। मृत्यु से तुम अमृत में, हे पूज्य पहुंचाओ मुझे।।

अत: देव सवित: का तकाजा है-

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय।।

२. विश्वानि दुरितानि परासुव- यह मंत्र का द्वितीय खंड और प्रार्थना का प्रथमार्ध है। दो प्रार्थनाएं हैं- (क) विश्वानि दुरितानि परासुव- सम्पूर्ण दुरित, दुष्ट गुण, दुष्टकर्म और दुष्ट स्वभाव को दूर कर दीजिए। (ख) यद् भद्रं तन्न आसुव- जो भद्र अर्थात् कल्याण कारक गुण, कर्म और स्वभाव हैं, वह सब मुझको प्राप्त करा दीजिए। परासुव और आसुव दोनों ही पदों में प्रेरणा का भाव निहित है। प्रभु की ऐसी प्रेरणा हो कि दुरित दूर हों और भद्र-कल्याण प्राप्त हों।

स्वामी दयानंद जी ने ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना में दुरित का अर्थ दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुख किया है।

सायणाचार्य ने 'अज्ञानान्निष्पन्नम्-दुरितम्' और दुरितानि पापानि' ऐसा अर्थ किया है। आप्टे ने दुरित का एक और अर्थ Bad Course किया है। 'दुरित' के व्युत्पत्ति गम्य अर्थ का आनंद लें और देखें कि कैसे दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुख, पाप और कुमार्ग आदि सभी इसमें समाए हुए हैं-

दुरितम्- दु:+इतम्। 'दु:' तो है ही सुस्पष्ट एवं असंदिग्ध बुरा, खराब, अर्थवाला उपसर्ग। 'इतम्' इण गतौ धातु का निष्ठा का रूप है। गति के तीन अत्यंत प्रसिद्ध अर्थ हैं- गतेस्त्रयोर्था: ज्ञानम्-गमनम्-प्राप्तिश्च। इस प्रकार दुरित के तीन अर्थ हुए- १. दुरित= दुष्ट ज्ञान, पुस्तकों, व्यक्तियों आदि से। २. दुरित = दुष्टगमन, शराब, जुआ के अड्डे, वेश्याओं के कोठे, उत्तेजना पूर्ण सिनेमा आदि। ३. दुरित= दुष्ट प्राप्ति, ताश के पत्ते, जुए की गोटियां, शराब आदि पीने के बर्तनों के सेट, शराब अदि।

यही दु:ख शब्द को देख लें। 'दु:' तो है ही दुष्ट। 'ख' हुआ आकाश जो गति का अधिष्ठान, गति-गमन करने की, जाने की जगह। दुष्ट जगहों पर गमन करने को एक शब्द में व्यक्त करना चाहे तो दु:ख उसका वाचक शब्द है। इसी प्रकार अच्छी जगहों पर जाने का वाच्यार्थ 'सुख' शब्द से अभिव्यक्त होगा। सो बुरी जगहों पर जाना दु:ख और अच्छी जगहों पर जाना सुख है।

दुरित दुष्टज्ञान बुराइयों के प्रधान स्रोत हैं। आजकल दुराचार, व्यभिचार, कदाचार से भरे हुए उपन्यास, पत्र पत्रिकाएं, कामुक साहित्य बाजारों स्टेशनों, बस अड्डों आदि पर भरे पड़े हैं। सदाचार सद्विचार के साहित्य निर्माण का कार्य दुर्लभ सा हो रहा है। साहित्य की स्वस्थ अस्वस्थ अनेक विधाएं आ रही हैं। किंतु साहित्य स्वयं ही 'हितेन सह सहितम्- सहितस्य भाव: साहित्यम्' की भावना से रहित हो गया है।

सभ्यता-संस्कृति का प्रमुख वाहक तो साहित्य ग्रंथ पत्र-पत्रिकाएं ही हैं। प्रथम तो अपसंस्कृतियों को सिद्धांत और आदर्श का जामा पहनाया जा रहा है। OO

जगद् गुरु स्वामी विरजानन्द

स्वामी देवव्रत

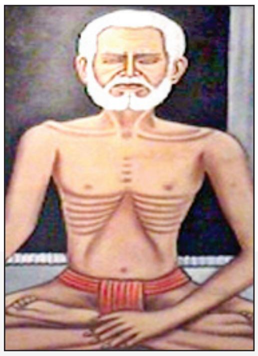

नमन स्मृति दिवस
14 सितम्बर

पंजाब आर्यसमाज के अनेक संत, महात्मा और नेताओं की जन्मभूमि है। स्वनाम धन्य गुरु विरजानन्द का जन्म जालंधर जिले में करतारपुर के निकट गंगापुर ग्राम में सन् १७७९ ई. में पं. नारायणदत्त सारस्वत के यहां हुआ। उनके यहां दो पुत्रों ने जन्म लिया। बड़े का नाम धर्मचन्द और छोटे का बृजलाल रखा गया। विधि का विधान विचित्र है। पांच वर्ष से कम आयु में ही बृजलाल की आंखों की ज्योति चेचक से नष्ट हो गयी। आंख है तो संसार है।

अभी तो बालक ने दुनिया को भली-भांति देखा भी नहीं था और उसकी दुनिया उजड़ भी गई। संभवत: विधाता ने किसी अतिविशिष्ट कार्य का उसे उत्तरदायित्व देना था, इसीलिए उसकी बाहर की दुनिया को बचपन में ही छीन लिया। आठवें वर्ष में उसके पिता ने गायत्री मंत्र की दीक्षा देकर स्वयं पढ़ाना प्रारम्भ किया। बालक की बुद्धि तार्किक और कुशाग्र थी। तीन वर्ष में ही उसने सारस्वत व्याकरण और अमरकोष कण्ठस्थ कर लिये तथा संस्कृत भाषण करने में दक्षता प्राप्त कर ली। यद्यपि नेत्रहीन हो जाने से कुछ कार्यों को करने में उसे कठिनाई होती, परंतु माता-पिता का सहारा होने से वह इधर ध्यान नहीं देता था और अपनी पूरी शक्ति से विद्याग्रहण करने में जुटा रहता था।

क्रूर विधाता को अभी भी संतोष नहीं था। बारहवें वर्ष में उसके माता-पिता भी चल बसे। अंधे की एक मात्र लाठी भी छीन ली गयी। अब वह नेत्रहीन होने के साथ अनाथ भी हो गया। माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् कुछ दिन तो उसके बड़े भाई ने उसे प्यार से रखा, परंतु कुछ दिनों पश्चात् उसका व्यवहार बदल गया। बड़ा भाई और भाभी इस बालक को अपशब्द कहते और उसे दुत्कारने लगते। उसका पालन-पोषण उन्हें भार लगने लगा। भोजन के स्थान पर प्रताड़ना और गालियां सुननी पड़ती। बृजलाल प्रारम्भ से ही उग्र स्वभाव, स्वाभिमानी और स्पष्ट वक्ता थे। 'गंगा-तीरमपि त्यजन्ति मलिनं ते राजहंसा वयम्।' मलिन गंगा के तीर को छोड़ देने वाले राजहंस के समान आखिर में इस साहसी बालक ने १३वें वर्ष में गृहत्याग कर ही दिया। एक अल्पवयस्क बालक का गृहत्याग किस विवशता में हुआ होगा इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। यह भी सम्भव है कि विधाता ने उसे भारत भाग्य-विधाता बनने का गुरुतर दायित्व देने का मानस बना रखा था। इसीलिए प्रारम्भ में ही उसे सभी लौकिक सुख सुविधाओं से वंचित कर दिया हो, अस्तु।

गृह त्याग के ढाई वर्ष पश्चात् बालक बृजलाल येन-केन प्रकारेण ऋषिकेश पहुंचे। आज से दो सौ वर्ष पहले का ऋषिकेश वर्तमान समय से सर्वथा भिन्न था। वहां घनी झाड़ियां थी, जिनमें दो प्रकार के प्राणी रहते थे। एक तो पर्णकुटी बना जंगली कंदमूल खाकर तप करने वाले तपस्वी संतजन और दूसरे सिंहादि हिंस्र जन्तु। पंद्रह वर्ष के सुकुमार, नेत्रविहीन संत ने भी एक पर्णकुटी को रहने योग्य बनाकर गायत्री उपासना प्रारम्भ कर दी। यह बालक प्रात:काल गंगा में स्नान करने के पश्चात् कंठ तक गंगाजल में खड़ा रहकर घंटों गायत्री का जप करते रहते। जंगली कंदमूल एकत्र कर उनसे उदरपूर्ति करते। कभी-कभी मंदिरों में जाकर भोजन कर लेते और शेष सारा समय गायत्री जप एवं प्रभु भक्ति में लगाते रहे। अंत में अशरण के शरण की कृपादृष्टि हुई। उसके ज्ञान-चक्षु खुल गये। तीन वर्ष तक कठोर तप, संयम, साधना ने उसे सिद्ध बना दिया। एक दिन रात्रि में अंतर्ध्वनि सुनाई दी- 'यहां जो होना था वह हो गया, अब तुम यहां से चले जाओ।

विधि का विधान विचित्र है। पांच वर्ष से कम आयु में ही बृजलाल की आंखों की ज्योति चेचक से नष्ट हो गयी। आंख है तो संसार है। अभी तो बालक ने दुनिया को भली-भांति देखा भी नहीं था और उसकी दुनिया उजड़ भी गई। संभवतः विधाता ने किसी अतिविशिष्ट कार्य का उसे उत्तरदायित्व देना था, इसीलिए उसकी बाहर की दुनिया को बचपन में ही छीन लिया। आठवें वर्ष में उसके पिता ने गायत्री मंत्र की दीक्षा देकर स्वयं पढ़ाना प्रारम्भ किया। बालक की बुद्धि तार्किक और कुशाग्र थी। तीन वर्ष में ही उसने सारस्वत व्याकरण और अमरकोष कण्ठस्थ कर लिये तथा संस्कृत भाषण करने में दक्षता प्राप्त कर ली। यद्यपि नेत्रहीन हो जाने से कुछ कार्यों को करने में उसे कठिनाई होती, परंतु माता-पिता का सहारा होने से वह इधर ध्यान नहीं देता था और अपनी पूरी शक्ति से विद्याग्रहण करने में जुटा रहता था। क्रूर विधाता को अभी भी संतोष नहीं था। बारहवें वर्ष में उसके माता-पिता भी चल बसे। अंधे की एक मात्र लाठी भी छीन ली गयी। अब वह नेत्रहीन होने के साथ अनाथ भी हो गया। माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् कुछ दिन तो उसके बड़े भाई ने उसे प्यार से रखा, परंतु कुछ दिनों पश्चात् उसका व्यवहार बदल गया।

बालक ने उसे ईश्वर आज्ञा मान अगले दिन ऋषिकेश छोड़ हरिद्वार के लिए प्रस्थान कर दिया।' अठारह वर्ष का युवक बृजलाल बीहड़ वन को पार कर हरिद्वार पहुंच गये। वहां उनकी भेंट दण्डी स्वामी पूर्णानंद से हुई। वे कौमुदी और अष्टाध्यायी के अच्छे ज्ञाता थे। उनके तप और विद्या की प्रशंसा सुन युवक ने सन् १७९७ में उनसे संन्यास की दीक्षा ली और गुरु से दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती नाम पाया। संन्यास की दीक्षा लेने के पश्चात् उन्होंने स्वामी पूर्णानंद जी से सिद्धांतकौमुदी और अष्टाध्यायी पढ़ना प्रारम्भ किया।

एक दूसरे पंडित से मध्य सिद्धांत कौमुदी को भी पढ़ा। वे दूसरे व्यक्ति से पहले पाठ को सुनते थे और एक दो बार सुनने के पश्चात् उसे कण्ठस्थ कर लेते थे तथा बाद में पढ़े हुए पर चिंतन-मनन चलता रहता था। अखण्ड ब्रह्मचर्य और गायत्री उपासना से उनकी मेधा बुद्धि जाग्रत् हो चुकी थी। पढ़ने के साथ ही वे दूसरे छात्रों को भी पढ़ाने भी लग गये।

तीन वर्ष तक इसी भांति हरिद्वार में पठन-पाठन करते रहने पर उनके गुरु ने काशी जाकर संस्कृत व्याकरण के सुप्रसिद्ध ग्रंथ महाभाष्य को पढ़ने की प्रेरणा दी। उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर स्वामी विरजानन्द जी एक दूसरे छात्र को साथ लेकर काशी के लिए चल पड़े और और गंगा के किनारे भ्रमण करते हुए एक वर्ष में वहां पहुंच गये। उस समय उनकी आयु इक्कीस वर्ष की हो गयी थी। काशी में वे एक साधु की खाली पड़ी कुटिया में रहने लगे। वे भिक्षा मांगने नहीं जाते थे। इसलिए दो-तीन दिन तक भूखा रहना पड़ा। जब लोगों को इस बात का पता लगा तो उनके भोजन की व्यवस्था वहीं पर कर दी गई।

काशी में दण्डी विरजानन्द जी अनेक पंडितों के पास विद्या पढ़ने के लिए जाने लगे। उनकी स्मरणशक्ति अद्भुत थी। वे एक बार सुनकर ही किसी ग्रंथ को हृदयंगम कर लेते थे और बाद में उसका मनन करते रहते थे। यहां उन्होंने व्याकरण के ग्रंथों के साथ मनोरमा, शेखर, न्यायमीमांसा और वेदान्तदर्शन भी पढ़े। उनकी पढ़ाई की शैली ऐसी थी कि सारी काशी के दिग्गज पंडितों में उनका स्थान चतुर्थ या पंचम माना जाने लगा। जब कभी विद्वानों की सभा होती तो उन्हें सादर निमंत्रित किया जाता और पालकी का व्यय भी दिया जाने लगा और पर्याप्त दक्षिणा भी मिलने लगी।

उन्हें जो दान-दक्षिणा मिलती उसे अपने शिष्यों में बांट देते थे। कुछ समय काशी में ठहरकर दण्डी स्वामी ने पैदल ही गया के लिए प्रस्थान किया। उनके पास दुर्लभ पुस्तकों की गठड़ी थी। मार्ग में कुछ चोरों ने उन्हें पकड़ लिया और पीड़ित करने लगे। दण्डीजी संस्कृत में ही बोलते थे। उन्होंने बहुतेरा कहा कि मेरे पास पुस्तकें ही हैं, परंतु चोर नहीं माने। इस पर उन्होंने उच्च स्वर में संस्कृत भाषा में ही शोर मचाना शुरू किया। संयोग से ग्वालियर के कोई प्रतिष्ठित सामंत अपने सशस्त्र सेवकों और एक पंडित के साथ समीप ठहरे हुए थे। उन्होंने चीत्कार सुनकर अपने सेवकों को उधर भेजा, जिनकी ललकार सुनकर चोर भाग निकले। सेवकों ने देखा तो एक नेत्रहीन साधु खड़ा है। नाम पूछने पर उसने संस्कृत में उत्तर दिया। सेवकों को कुछ भी समझ में नहीं आया। सामंत का पंडित वहां आया और उन्हें आदर से अपने साथ लिवा ले गया। साधु महाविद्वान हैं यह जानकर सामंत ने उन्हें अपने पास रहने का आग्रह किया। पांच दिन वहां रहकर दण्डीजी गया के लिए चल गड़े। उन्होंने बहुत समय रहकर वेदांतग्रंथों का अध्ययन किया।

यहां से वे कलकत्ता गए जहां अपने संस्कृत ज्ञान के लिए उन्हे प्रशंसा मिली। इसके बाद ये निमंत्रण पर अलवर आए और यहां उन्होंने शब्द-बोध ग्रंथ की रचना की। इसकी मूल प्रति अब भी वहां के संग्रहालय में रखी है। इसके बाद वे मथुरा में रहे जहां उन्होंने पाठशाला स्थापित की। इसमें देश भर से संस्कृत जिज्ञासु आए और राजपूतों की तरफ से दान भी मिले।

स्वामी दयानन्द सरस्वती से भेंट : लगभग इसी समय स्वामी दयानन्द सरस्वती जी सत्य को जानने की अभिलाषा से घर परिवार त्यागकर सच्चे गुरू की खोज में निकल पड़े थे। भारत के अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए वे सन् १८६० में गुरुवर स्वामी विरजानन्द के आश्रम में पहुंचे। जहां उन्हें नई दृष्टि, सद्प्रेरणा और आत्मबल मिला। वर्षों तक भ्रमण करने के बाद जब वे भगवान श्रीकृष्ण की जन्मस्थली मथुरा में गुरु विरजानन्द जी की कुटिया पर पहुंचे तो गुरु विरजानन्द ने उनसे पूछा कि वे कौन हैं। तब स्वामी दयानन्द ने कहा, गुरुवर यही तो जानना चाहता हूं कि वास्तव में, मैं कौन हूं? प्रश्न के उत्तर से संतुष्ट होकर गुरुवर ने दयानन्द को अपना शिष्य बनाया।

स्वामी विरजानन्द उच्च कोटि के विद्वान थे, उन्होंने वेद मंत्रों को नई दृष्टि से देखा था और वेदों को एक नवीन व्यवस्था प्रदान की थी। उन्होंने दयानन्द जी को वेद शास्त्रों का अभ्यास कराया।

दक्षिणा : अध्ययन पूरा होने के बाद जब दयानन्द जी गुरु विरजानन्द जी को गुरु दक्षिणा के रूप में थोड़े से लौंग, जो गुरू जी को बहुत पसंद थी लेकर गये तो गुरू जी ने ऐसी दक्षिणा लेने से मना कर दिया। उन्होंने दयानन्द से कहा कि गुरू दक्षिणा के रूप में, मैं यह चाहता हूं कि समाज में फैले अंधविश्वास और कुरीतियों को समाप्त करो। गुरू जी के आदेश के अनुसार स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक उत्थान में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

सम्मान और महत्व : इनकी स्मृति में करतारपुर के ग्रैंड ट्रंक रोड पर एक स्मारक बनवाया गया जिसकी आधारशिला श्री बद्रीनाथ आर्य ने रखी (उन्होंने बाद में आर्य समाज नैरोबी की स्थापना भी की)। १४ सितम्बर १९७१ को डाक विभाग ने इनकी स्मृति में एक टिकट भी जारी किया। आजादी के आंदोलन और वैदिक पुनरुत्थान में आर्य समाज का योगदान अतिप्रशंसित रहा है और इनके संस्थापक दयानन्द जी को ज्ञान स्वामी विरजानन्द से ही मिला, इसलिए आधुनिक भारत में इनके योगदान को और सराहे जाने की आवश्यकता है।

महान क्रांतिकारी देशभक्त सरदार भगत सिंह

जन्म : 28 सितम्बर पर शत्-शत् नमन

भगत सिंह का जीवन चरित्र लाखों नौजवानों को देश और मातृभूमि के प्रति कर्तव्य पालन की सीख देता रहा है। क्रांतिकारी भगत सिंह का जन्म 28 सितम्बर 1907 को पंजाब प्रांत, जिला- लायलपुर, के बावली गांव में हुआ था, जो अब पाकिस्तान का हिस्सा है। पाकिस्तान में भी भगत सिंह को आजादी के दीवाने की तरह याद किया जाता है। भगत सिंह के पिता का नाम सरदार किशन सिंह और माता का नाम विद्यावती कौर था। भगत सिंह के पांच भाई- रणवीर, कुलतार, राजिंदर, कुलबीर, जगत और तीन बहनें- प्रकाश कौर, अमर कौर एवं शकुंतला कौर थीं। अपने चाचा अजीत सिंह और पिता किशन सिंह के साये में बड़े हो रहे भगत सिंह बचपन से अंग्रेजों की ज्यादती और बर्बरता के किस्से सुनते आ रहे थे। यहां तक की उनके जन्म के समय उनके पिता जेल में थे। चाचा अजीत सिंह भी एक सक्रिय स्वतंत्रता सेनानी थे। भगत सिंह की पढ़ाई दयानंद एंग्लो वैदिक हाई स्कूल में हुई। भगत सिंह लाहौर के नेशनल कॉलेज से बी.ए. कर रहे थे तभी उनके देश प्रेम और मातृभूमि के प्रति कर्तव्य ने उनसे पढ़ाई छुड़वा कर देश की आजादी के पथ पर ला खड़ा किया।

अशोक कौशिक

यह गाथा है महान क्रांतिकारी देशभक्त सरदार भगत सिंह के शौर्य और पराक्रम की। अपने 23 वर्ष 5 माह और 23 दिन के अल्पकालीन जीवन मे जिस महा-मानव ने देश भक्ति के मायने बदल कर रख दिये और मातृभूमि के प्रति कर्तव्य कैसे निभाया जाता है, इसकी अद्‌भुत मिसाल दी। भगत सिंह का जीवन चरित्र लाखों नौजवानों को देश और मातृभूमि के प्रति कर्तव्य पालन की सीख देता रहा है।

क्रांतिकारी भगत सिंह का जन्म 28 सितम्बर 1907 को पंजाब प्रांत, जिला-लायलपुर, के बावली गांव में हुआ था, जो अब पाकिस्तान का हिस्सा है। पाकिस्तान में भी भगत सिंह को आजादी के दीवाने की तरह याद किया जाता है। भगत सिंह के पिता का नाम सरदार किशन सिंह और माता का नाम विद्यावती कौर था। भगत सिंह के पांच भाई- रणवीर, कुलतार, राजिंदर, कुलबीर, जगत और तीन बहनें- प्रकाश कौर, अमर कौर एवं शकुंतला कौर थीं।

अपने चाचा अजीत सिंह और पिता किशन सिंह के साये में बड़े हो रहे भगत सिंह बचपन से अंग्रेजों की ज्यादती और बर्बरता के किस्से सुनते आ रहे थे। यहां तक की उनके जन्म के समय उनके पिता जेल में थे। चाचा अजीत सिंह भी एक सक्रिय स्वतंत्रता सेनानी थे। भगत सिंह की पढ़ाई दयानंद एंग्लो वैदिक हाई स्कूल में हुई। भगत सिंह लाहौर के नेशनल कॉलेज से बी.ए. कर रहे थे तभी उनके देश प्रेम और मातृभूमि के प्रति कर्तव्य ने उनसे पढ़ाई छुड़वा कर देश की आजादी के पथ पर ला खड़ा किया।

एक सामान्य नवयुवक के सपनों से अलग भगत सिंह का बस एक ही सपना था- 'आजादी'। और ऐसा लग रहा था कि भगत सिंह अपने देश अपनी मातृभूमि को अंग्रेजों से आजाद कराने के लिए ही सांसे ले रहे थे।

भगत सिंह पर 1919 के जलियांवाला बाग हत्याकांड का प्रभाव : जलियांवाला बाग में शांतिपूर्ण तरीके से सभा आयोजित करने के इरादे से इक्कठा हुए मासूम बेकसूर लोगों को जिस तरह से घेर कर मारा गया, उस घटना ने भगत सिंह को झकझोर कर रख दिया। जलियांवाला बाग में बच्चों, बूढ़ों, औरतों, और नौजवानों की भारी तादाद पर अंधाधुंध गोलियां बरसा कर अंग्रेजों ने अपने अमानवीय, क्रूर और घातकी होने का सबूत दिया था। बंदूक से निकली गोलियों से बचने के लिए मासूम लाचार लोग वहां ऊंची दीवारों से कूदने की कोशिश करते रहे। बाग में मौजूद पानी भरी बावली में कूदने लगे। जान बचाने की अफरातफरी में चीख पुकार करते उन लोगो पर जालिम अंग्रेजों को अत्याचार करते जरा भी दया नहीं आयी।

जलियांवाला बाग में जब यह हत्याकांड हुआ तब भगत सिंह की उम्र केवल बारह साल थी। जलियांवाला बाग हत्याकांड की खबर मिलते ही नन्हें भगत सिंह बारह मील दूर तक चलकर हत्याकांड वाली जगह पर पहुंचे। जलियांवाला बाग पर हुए अमानवीय, बर्बर हत्याकांड के निशान चीख-चीख कर जैसे भगत सिंह को इंसानियत की मौत के मंजर की गवाही दे रहे थे।

भगत सिंह पर गांधीजी के असहयोग आंदोलन से पीछे हटने का प्रभाव : महात्मा गांधी भी एक दिग्गज स्वतंत्रता सेनानी थे। सत्य बोलना, अहिंसा के मार्ग पर चलना, अपनी बात दूसरों से अच्छे तरीके से मनवाना, यह सब गांधीजी के अग्रिम गुण थे। महात्मा गांधीजी ने चौरीचौरा में हुई हिंसात्मक कार्यवाही के चलते जब अंग्रेजों के खिलाफ छेड़ा हुआ असहयोग आंदोलन रद्द किया तब भगत सिंह और देश के कई अन्य

नौजवानों के मन मे रोष भर गया। और तभी भगत सिंह ने गांधीजी की अहिंसावादी विचार धारा से अलग पथ चुन लिया।

भगत सिंह की विचारधारा : भगत सिंह एक स्पष्ट वक्ता और अच्छे लेखक थे। बचपन से ही क्रांतिकारी पात्रों पर लिखी गयी किताबें पढ़ने में भगत सिंह को रुचि थी। भगत सिंह को हिन्दी, पंजाबी, अंग्रेजी, और बंगाली भाषा का ज्ञान था। एक आदर्श क्रांतिकारी के सारे गुण भगत सिंह में थे। वह धार्मिक मान्यता में यानी अर्चना पूजा मे ज्यादा विश्वास नहीं रखते थे। अगर ये कहा जाये कि भगत सिंह नास्तिक थे तो गलत नहीं होगा।

येरवड़ा जेल में भगत सिंह का वीर सावरकर से मिलाप : वीर सावरकर ही वो इंसान थे जिनके कहने पर भगत सिंह की मुलाकात चन्द्रशेखर आजाद जी से हुई थी। वीर सावरकर से भगत सिंह ने क्रांति और देशभक्ति के पथ पर चलने के कई गूढ़ रहस्य सीखे। चन्द्रशेखर आजाद के दल मे शामिल होने के बाद कुछ ही समय मे भगत सिंह उनके दल के प्रमुख क्रांतिकारी बन गए।

भगत सिंह और काकोरी कांड : काकोरी कांड के आरोप में गिरफ्तार हुए तमाम आरोपियों में से चार को मृत्युदंड की सजा सुनाई गयी और अन्य सोलह आरोपियों को आजीवन कारावास की सजा दी गयी। इस खबर ने भगत सिंह को क्रांति के धधकते अंगारे में बदल दिया। और उसके बाद भगत सिंह ने अपनी पार्टी 'नौजवान भारत सभा' का विलय 'हिंदुस्तान रिपब्लिकन ऐसोसिएशन' करके नयी पार्टी 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन' का आह्वान किया।

भगत सिंह और उनके दल का 'लाला लाजपतराय' की मौत का बदला : वर्ष 1928 मे साइमन कमीशन के विरोध में पूरे देश में प्रदर्शन रहे थे। और इसी के चलते एक महत्वपूर्ण प्रदर्शन में लाठी चार्ज के दौरान लाला लाजपतराय गंभीर रूप से घायल हुए। और फिर उनकी मृत्यु हो गयी। भगत सिंह और उनके दल ने लाला लाजपतराय की मृत्यु का बदला लेने के लिए स्काट को मारने की योजना बनायी। तारीख 17 दिसंबर 1928 को दोपहर सवा चार बजे लाहौर कोतवाली पर भगत सिंह, राजगुरु जयगोपाल, चन्द्रशेखर, तैनात हुए और स्काट की जगह साण्ड्र्स को देख कर उसे मारने के लिए आगे बढ़ गए। क्योंकि साण्ड्र्स भी उसी जालिम हुकूमत का एक नुमाइंदा था। एक गोली राजगुरु ने साण्ड्र्स को कंधे पर मारी। फिर भगत सिंह ने साण्ड्र्स को तीन चार गोलियां मारी और इस तरह साण्ड्र्स को मारकर भगत सिंह और उनके साथियों ने लालजी की मौत का बदला लिया।

भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त का दिल्ली की केन्द्रीय एसेम्बली में बम फेंकना ब्रिटिश सरकार को भारत के आम आदमी, मजदूर, छोटे व्यवसायी, गरीब कामगार, वर्ग के दुख और तकलीफों से कोई लेनदेना नहीं था। उनका मकसद सिर्फ भारत देश को लूटना, और भारत पर शासन करना था। अपने इसी नापाक इरादे के साथ ब्रिटिश सरकार मजदूर विरोधी बिल पारित करवाना चाहती थी। भगत सिंह, चंद्रशेखर और उनके दल को यह मंजूर नहीं था कि देश के आम इन्सान, जिनकी हालत पहले से ही गुलामी के कारण खराब थी, वो और खराब हो जाये। इसलिए योजना के मुताबिक दल की सर्व सम्मति से भगत सिंह और उनके साथी बटुकेश्वर दत्त का नाम एसेम्बली में बम फेंकने के लिए चुना गया। और फिर ब्रिटिश सरकार के अहम मजदूर विरोधी नीतियों वाले बिल पर विरोध जताने के लिए भगत सिंह और उनके साथी बटुकेश्वर दत्त ने दिल्ली की केन्द्रीय एसम्बली में 8 अप्रैल 1929 को बम फेंके। बम फेंकने का मकसद किसी की जान लेना नहीं था। पर ब्रिटिश सरकार को अपनी बेखबरी भरी गहरी नींद से जगाना और बिल के खिलाफ विरोध जताना था। एसेम्बली में फेंके गए बम बड़ी सावधानी से खाली जगह का चुनाव करके फेंके गए थे। और उन बमों में कोई जानलेवा विस्फोटक नहीं इस्तेमाल किए गए थे। बम फेंकने के बाद भगत सिंह और उनके साथी बटुकेश्वर दत्त ने इन्कलाब जिंदाबाद के नारे लगाते हुए स्वैच्छिक गिरफ्तारी दी।

चंद्रशेखर आजाद बम फेंक कर गिरफ्तारी देने के प्रस्ताव से ज्यादा सहमत नहीं थे। भगत सिंह की देश को आगे और जरूरत है। भगत सिंह ने दृढ़ निश्चय कर लिया था, की उनका जीवन इतना जरूरी नहीं है, जितना अंग्रेजों के भारतीयों पर किए जा रहे अत्याचारों को विश्व के सामने लाना। एसम्बली मे फेंके गए बम के धमाकों की गूंज ब्रिटेन की महारानी के कानों तक भी पहुंची।

भगत सिंह और उनके साथियों के जेलवास के दौरान भूख हड़ताल : भगत सिंह ने अपने तकरीबन दो साल के जेल-कारावास के दौरान कई पत्र लिखे थे। और अपने कई लेख में पूंजीपतियों की शोषण युक्त नितियों की कड़ी निंदा की थी। जेल में कैदियों को कच्चे-पक्के खाने और अस्वच्छ निर्वास में रखा जाता था। भगत सिंह और उनके साथियों ने इस अत्याचार के खिलाफ आमरण अनशन, भूख हड़ताल का आह्वाहन किया। और तकरीबन दो महीनों तक भूख हड़ताल जारी रखी। अंत में अंग्रेज सरकार ने घुटने टेक दिये। और उन्हें मजबूर होकर भगत सिंह और उनके साथियों की मांगे माननी पड़ी। पर भूख हड़ताल के कारण क्रांतिकारी यतींद्रनाथ दास शहीद हो गए।

भगत सिंह और उनके दोनों साथी राजगुरु और सुखदेव को फांसी : देश की आजादी के लिए अपनी जान की परवाह किये बिना लड़ने वाले स्वतंत्रता सेनानी भगत सिंह राजगुरु और सुखदेव को 23 मार्च 1931 की शाम करीब 7 बजकर 33 मिनट पर फांसी दे दी गयी। भगत सिंह की फांसी के दिन उनकी उम्र 23 वर्ष 5 माह और 23 दिन थी, और उन्हें जिस दिन फांसी दी गयी, उस दिन भी 23 तारीख थी। कहा जाता है के इन तीनों क्रांतिकारियों को निर्धारित समय से पहले ही फांसी दी गयी थी। ताकि देश के आम लोगों में इस फैसले के खिलाफ क्रांति की ज्वाला ना भड़के। कहा जाता है कि फांसी के दिन भगत सिंह क्रांतिकारी लेनिन की किताब पढ़ रहे थे। और फांसी पर चढ़ने जाने से पहले उन्होंने लेनिन की किताब को अपने सीने से लगाकर जेल (अधिकारी) से कहा था-जरा रुक जाइये एक क्रांतिकारी का दूसरे क्रांतिकारी से मिलाप हो रहा है। भगत सिंह की इच्छा थी कि उन्हे अपराधी की तरह फांसी पे चढ़ा कर नहीं, पर युद्धबंदी की तरह गोली मार कर दंड दिया जाए, पर उनकी यह बात मान्य नहीं रखी गयी थी और अंततः उन्हें और उनके साथियों राजगुरु और सुखदेव को फंसी दे दी गयी।

OO

सृष्टि उत्पत्ति विषयक वैदिक सिद्धांत और स्वामी जी

ओमकार शास्त्री
संस्कृत प्रवक्ता, आर्ष गुरुकुल, नोएडा

प्राचीन वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार यह समस्त जगत इसको बनाने वाले निमित्त कारण परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है। परमेश्वर ने इस जगत को उपादान कारण अर्थात सत्व, रज व तम गुणों वाली सूक्ष्म व मूल प्रकृति से बनाया है। इस मूल प्रकृति को ईश्वर ने उत्पन्न नहीं किया। यह भी जानने योग्य है कि संसार में ईश्वर, जीव व प्रकृति, यह तीन पदार्थ अनादि व नित्य हैं। इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस संसार में पाप-पुण्य रूप फलों को अच्छे प्रकार भोक्ता है और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को न भोक्ता हुआ चारों ओर अर्थात भीतर व बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है।

सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में महाभारत काल के बाद उत्पन्न मत-मतान्तरों के साहित्य में अनेक प्रकार के अवैज्ञानिक व अविश्वसनीय विचार पायें जाते हैं। महर्षि दयानन्द इन सबमें अपवाद हैं। उनके जीवन में शिवरात्रि को घटी चूहे की घटना बताती है कि उन्होंने किशोरावस्था में ही जीवन की सभी बातों को तर्क व युक्ति के आधार पर सिद्ध होने पर ही स्वीकार करने का मन बना लिया था। यही कारण था कि वइ ईश्वर, जीव, प्रकृति व सृष्टि विषयक सत्य ज्ञान की खोज में अनेक वर्षो तक अध्ययन व अनुसंधान आदि करते रहे। उन्होंने सृष्टि की उत्पत्ति विषयक अपने विचार मुख्यतः सत्यार्थप्रकाश के आठवें समुल्लास में व्यक्त किये हैं जिनका आधार वेद, दर्शन व उपनिषद आदि ग्रन्थ हैं। हमनें भी महर्षि दयानन्द के इस विषय के विचारों का अनेक बार पाठ व मनन किया है और हमारा विश्वास है कि आने वाले समय में विज्ञान इन विचारों को पूर्णतः स्वीकार कर लेगा जिसका कारण वेदों का ईश्वर प्रदत्त होने से निर्भ्रान्ति होना व वैदिक साहित्य अल्पज्ञ वैज्ञानिकों से भी कहीं अधिक उच्च ज्ञान व विज्ञान के उच्च कोटि के चिंतक मनीषी ऋषियों की देन है।

सत्यार्थप्रकाश में ऋग्वेद 12/129/7 मंत्र के आधार पर महर्षि दयानन्द कहते हैं कि यह विविध सृष्टि इस जगत के स्वामी ईश्वर से प्रकाशित हुई है। वह इस जगत का धारण व प्रलयकर्ता है। इस सृष्टि को बनाने वाला ईश्वर इस जगत में व्यापक है। उसी से यह सब जगत उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय को प्राप्त होता है। मनुष्य अर्थात आत्मा को उस परमात्मा को जानना चाहिये और उसके स्थान पर किसी अन्य को सृष्टिकर्ता नहीं मानना चाहिये। ऋग्वेद के मंत्र 10/29/3 में बताया गया है कि जगत की रचना से पूर्व सब जगत अंधकार से आवृत, रात्रिरूप में जानने के अयोग्य, आकाश रूप तथा तुच्छ अर्थात अनंत परमेश्वर के सम्मुख एक देशी आच्छादित था। पश्चात परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से इस कारण रूप जगत को कार्यरूप कर दिया अर्थात बना दिया। ऋग्वेद के मंत्र- येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्व स्तकिंत येन नाकः। योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।। में कहा गया है कि सब सूर्यादि तेजस्वी पदार्थो का आधार और जो यह जगत हुआ है और होगा उस का एक अद्वितीय पति परमात्मा इस जगत की उत्पत्ति के पूर्व विद्यमान था और जिस ने पृथ्वी से लेकर सूर्यपर्यन्त जगत को उत्पन्न किया है, हे मनुष्य! उस परमात्म देव की प्रेम से भक्ति किया करें।

यजुर्वेद के मंत्र 31/2 में ईश्वर ने बताया है कि जो ईश्वर सब सृष्टिगत पदार्थो में पूर्ण पुरुष है, जो नाशरहित कारण जड़ प्रकृति और जीव का स्वामी है तथा जो पृथिव्यादि जड़ और जीव से अतिरिक्त है, हे मनुष्य! वही पुरुष इस सब भूत, भविष्यत और वर्तमानस्थ जगत का बनाने वाला है, ऐसा सब मनुष्यों को जानना चाहिये। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि जिस परमात्मा द्वारा रचना करने से ये सब पृथिव्यादि भूत व पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जिससे जीते और जिससे व जिसमें प्रलय को प्राप्त होते हैं, वह ब्रह्म है। उस को जानने की इच्छा सभी मनुष्यों को करनी चाहिये। शारीरिक सूत्रों में कहा गया है कि इस जगत का जन्म, स्थिति और प्रलय जिस से होता है, वह ब्रह्म है और वह जानने के योग्य है।

प्राचीन वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार यह समस्त जगत इसको बनाने वाले निमित्त कारण परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है। परमेश्वर ने इस जगत को उपादान कारण अर्थात सत्व, रज व तम गुणों वाली सूक्ष्म व मूल प्रकृति से बनाया है। इस मूल प्रकृति को ईश्वर ने उत्पन्न नहीं किया। यह भी जानने योग्य है कि संसार में ईश्वर, जीव व प्रकृति, यह तीन पदार्थ अनादि व नित्य हैं। इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस संसार में पाप-पुण्य रूप फलों को अच्छे प्रकार भोक्ता है और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को न भोक्ता हुआ चारों ओर अर्थात भीतर व बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप व तीनों अनादि हैं। उपनिषद् में बताया गया है कि प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों अज अर्थात जिनका जन्म कभी नहीं होता और न कभी यह तीन पदार्थ जन्म लेते हैं अर्थात ये तीन पदार्थ सब जगत के कारण हैं। इन का कारण कोई नहीं। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ शुभ व अशुभ कर्म के बंधनों में फंसता

है और उस में परमात्मा नहीं फंसता क्योंकि वह प्रकृति व उसके पदार्थों का भोग नहीं करता।

प्रकृति क्या है, इसका वर्णन सांख्य दर्शन- सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः से स्पष्ट है कि इसके अनुसार प्रकृति (सत्व) शुद्ध (रजः) मध्य (तमः) जाड्य अर्थात जड़ता गुणों से युक्त है। यह तीन गुण मिलकर इनका जो संघात है उसका नाम प्रकृति है अर्थात सत्व, रज व तम गुणों का संघात प्रकृति सूक्ष्मतम कण की एक इकाई के समान है। सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर इस प्रकृति के सूक्ष्म सत्व, रज व तम कणों में अपनी मनस शक्ति से विकार व विक्षोभ उत्पन्न कर इनसे महत्व बुद्धि, उससे अर्थात उस महत्व बुद्धि से अहंकार, उस से पांच तन्मात्रा सूक्ष्म भूत और दश इन्द्रियां तथा ग्यारहवां मन, पांच तन्मात्राओं से पृथिव्यादि पांच भूत ये चौबीस पदार्थ बनते हैं। पच्चीसवां पुरुष अर्थात जीव और परमेश्वर हैं। इनमें से सत्व, रज व तम गुणों वाली प्रकृति अधिकारिणी और महत्व बुद्धि, अहंकार तथा पांच सूक्ष्म भूत प्रकृति का कार्य हैं। यही पदार्थ इंद्रियों, मन तथा स्थूल भूतों के कारण हैं। पुरुष अर्थात जीवात्मा न किसी की प्रकृति, न किसी का उपादान कारण और न किसी का कार्य है। एक उपनिषद वचन में कहा गया है कि हे श्वेतकेतो! यह जगत सृष्टि के पूर्व सत्, असत्, आत्मा और ब्रह्मरूप था। वही परमात्मा अपनी इच्छा से प्रकृति व जीवों के द्वारा बहुरूप व जगत रूप हो गया।

जगत की उत्पत्ति के तीन कारण क्रमशः निमित्त, उपादान तथा साधारण, यह तीन कारण होते हैं। निमित्त कारण उसको कहते हैं कि जिसके बनाने से कुछ बने, न बनाने से न बने, आप स्वयं बने नहीं और दूसरे को प्रकारान्तर बना देवे। दूसरा उपादान कारण उस को कहते हैं जिसके बिना कुछ न बने, वही अवस्थान्तर रूप होकर बने व बिगड़े भी। तीसरा साधारण कारण उस को कहते हैं कि जो बनाने में साधन और साधारण निमित्त हो। निमित्त कारण दो प्रकार के होते हैं। एक-सब को कारण से बनाने, धारण करने और प्रलय करने तथा सब की व्यवस्था रखने वाला मुख्य निमित्त कारण परमात्मा। दूसरा-परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेक विधि कार्यान्तर बनाने वाला साधारण निमित्त कारण जीव। सृष्टि का उपादान कारण प्रकृति को कहते हैं। प्रकृति वा परमाणु रूप प्रकृति जिसको सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं। वह जड़ होने से अपने आप न बन और न बिगड़ सकती है किन्तु दूसरे के बनाने से बनती और बिगाड़ने से बिगड़ती है। कहीं-कहीं जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ भी जाता है। जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथ्वी से गिरने और जल पाने से वृक्षाकार हो जाते हैं और अग्नि आदि जड़ के संयोग से बिगड़ भी जाते हैं। परन्तु इनका नियमपूर्वक बनना और बिगड़ना परमेश्वर और जीव के अधीन है।

जब कोई वस्तु बनाई जाती है तब जिन-जिन साधनों का प्रयोग करते हैं वह ज्ञान, दर्शन, बल, हाथ और नाना प्रकार के साधन कहलाते हैं और दिशा, काल और आकाश साधारण कारण होते हैं। जैसे घड़े का बनाने वाला कुम्हार निमित्त कारण, मिट्टी उपादान कारण और दण्ड चक्र आदि सामान्य कारण। दिशा, काल, आकाश, प्रकाश, आंख, हाथ, ज्ञान, क्रिया आदि साधारण और निमित्त कारण भी होते हैं। इन तीन कारणों के बिना कोई भी वस्तु नहीं बन सकती और न बिगड़ सकती है।

इस प्रकार से यह समस्त जगत जिसमें सूर्य, चन्द्र, तारें, पृथ्वी व पृथ्वी के सभी पदार्थ तथा प्राणी जगत सम्मिलित है निमित्त कारण ईश्वर द्वारा उपादान कारण परमाणु रूप प्रकृति से बनाये गये हैं। परमात्मा के सर्वव्यापक, सर्वान्तिर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, अनादि, नित्य आदि गुणों से युक्त होने से उसके द्वारा सृष्टि बनाने व उसे संचालित करने में असम्भव जैसा कुछ भी नहीं है। यह वर्णन पूर्णतः सत्य, वैज्ञानिक, तर्क संगत, विश्वसनीय, निर्भ्रान्ति व वेदों के प्रमाणों से पुष्ट है। अतः इस सिद्धान्त को सभी आध्यात्मवा-दियों व भौतिक विज्ञान के वैज्ञानिकों को मानना चाहिये। इसके विपरीत वैज्ञानिकों के पास अभी तक सृष्टि उत्पत्ति का कोई सन्तोषजनक उत्तर इसलिए नहीं है कि यह सृष्टि अनादि निमित्त कारण ईश्वर द्वारा अनादि उपादान कारण प्रकृति से निर्मित की गई है जिसका उद्देश्य अनादि जीवात्माओं को उनके पूर्वजन्मों के कर्मो का सुख व दुखरूपी फल प्रदान करना है। सृष्टि रचना विषयक इस ज्ञान के विस्तार व संशयों के निवारण के लिए महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश का आठवां समुल्लास व ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के सृष्टि की रचना व उत्पत्ति के प्रकरणों को देखना चाहिये। वेद, उपनिषदों व दर्शनों का अध्ययन भी इस विषय की सभी शंकाओं को दूर करता है। योग का अभ्यास, ध्यान व समाधि से भी ईश्वर द्वारा सृष्टि रचना का यह गुप्त व सूक्ष्म विषय जाना जा सकता है। ◯◯

जगत की उत्पत्ति के तीन कारण क्रमशः निमित्त, उपादान तथा साधारण, यह तीन कारण होते हैं। निमित्त कारण उसको कहते हैं कि जिसके बनाने से कुछ बने, न बनाने से न बने, आप स्वयं बने नहीं और दूसरे को प्रकारान्तर बना देवे। दूसरा उपादान कारण उस को कहते हैं जिसके बिना कुछ न बने, वही अवस्थान्तर रूप होकर बने व बिगड़े भी। तीसरा साधारण कारण उस को कहते हैं कि जो बनाने में साधन और साधारण निमित्त हो। निमित्त कारण दो प्रकार के होते हैं। एक-सब को कारण से बनाने, धारण करने और प्रलय करने तथा सब की व्यवस्था रखने वाला मुख्य निमित्त कारण परमात्मा। दूसरा-परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेक विधि कार्यान्तर बनाने वाला साधारण निमित्त कारण जीव। सृष्टि का उपादान कारण प्रकृति को कहते हैं। प्रकृति वा परमाणु रूप प्रकृति जिसको सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं। वह जड़ होने से अपने आप न बन और न बिगड़ सकती है किन्तु दूसरे के बनाने से बनती और बिगाड़ने से बिगड़ती है। कहीं-कहीं जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ भी जाता है।

आर्य समाज का सातवां नियम...

प्रो. रत्न सिंह

सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्त्तना चाहिए।

समस्त संसार को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- मैं और तू। मैं एक चेतन प्राणी हूं। और तू के अंतर्गत जड़ और चेतन दोनों आते हैं। जड़ के अंतर्गत सूर्य, चंद्रमा, नक्षत्र, पृथ्वी, नदी, नाले, समुद्र, झील, तालाब, पर्वत, अग्नि, वायु और आकाश आदि सभी आते हैं और चेतन के अंतर्गत पशु, पक्षी एवं मनुष्य आते हैं।

किसी न किसी रूप में मेरा इस सभी से संबंध रहता है। सातवें नियम में 'सबसे' के अंतर्गत चेतन जगत आता है। इन सबसे एक आर्य समाजी को कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसका निर्देश इस नियम में किया गया है। हमारे व्यवहार के तीन प्रकार कहे गये हैं- १. प्रीतिपूर्वक, २. धर्मानुसार और तीसरा यथायोग्य।

सामाजिक जीवन की सफलता, सुदृढ़ता और विकास प्रीतिपूर्वक व्यवहार पर निर्भर करता है। प्रीति या प्रेम एक संवेग है जो एक को दूसरे से जोड़ता है या बांधता है। यह सीमेंट का काम करता है, जो एक ईंट को दूसरी ईंट से जोड़कर एक मजबूत दीवार का निर्माण करता है। बिना सीमेंट के ईंटों को एक-दूसरे के ऊपर रखते जाइए इससे एक सुदृढ़ दीवार न बन सकेगी। एक हल्के धक्के में सब ईंटें नीचे गिर जाएगी। इसी प्रकार से हजारों व्यक्तियों को एक स्थान पर इकट्ठा कर दीजिए। बिना प्रेम के उनमें से न परिवार बन सकेगा, न कोई अन्य सामाजिक संगठन, इसलिए हमें सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करना चाहिए। हमारा यह व्यवहार मनुष्य जाति तक सीमित न रहे। हमें पशुओं और पक्षियों से भी प्रेम करना चाहिए। यह तो मानना पड़ेगा कि मनुष्य के विकास में पशु-पक्षियों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। दूध और अन्न का उपार्जन बिना पशुओं के सम्भव नहीं है। यह भी सत्य है कि जहां प्रेम होता है, वहां ईर्ष्या-द्वेष और हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं रहता, अत: यह नियम हमें, यह भी आदेश देता है कि नरवध और पशुवध से भी हमें बचना चाहिए।

इस प्रकार के सातवें नियम के ' सबसे प्रीतिपूर्वक' शब्दों से स्पष्ट होता है कि संसार भर के जितने भी मनुष्य है उनसे बिना जाति, मत, महज, भाषा, देश, वर्ण, ऊंचे-नीचे, अपने-पराये के भेदभाव का प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। इसका फल यह होगा कि समाज में से वैर, शत्रुता और घृणा स्वत: मिट जाएंगे, क्योंकि-

करूं में दुश्मनी किससे, अगर दुश्मन भी हो अपना।
मुहब्बत ने नहीं छोड़ी जगह दिल में अदावत की।।

इसके अनंतर इस नियम में 'धर्मानुसार' व्यवहार करने का विधान है। महर्षि दयानंद ने इस पद का अर्थ सत्य और असत्य का विचार किया है। धर्मानुसार की व्याख्या आर्य समाज के पांचवें नियम में देखिए। अपने बच्चे के प्रति प्रेम करना स्वाभाविक है। कभी-कभी ऐसा देखने में आता है कि पिता मोहवश अपने पुत्र के अपराध पर उसे दंडित न कर उसके कर्म की उपेक्षा कर देता है। यह नियम आदेश देता है कि सत्यासत्य का विचार कर, पुत्र को दंड अवश्य देना चाहिए। अन्यथा समाज में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी। सत्य कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति को बिना पक्षपात के अपने और पराए का विचार न करते हुए समान रूप में उसके शुभाशुभ कर्म का फल अवश्य मिलना चाहिए।

आर्यों का व्यवहार प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार तो होना ही चाहिए, परंतु वह यथायोग्य भी हो। नियम का यह अंश बहुत महत्वपूर्ण और विचारणीय है। मनुष्यों में शारीरिक और मानसिक दृष्टि से भिन्नता होता है। सबका स्वभाव और प्रवृत्ति समान नहीं होती। अतएव सबके साथ समान व्यवहार करना अनुचित है। खीर का भोजन स्वादिष्ट और शक्तिवर्धक है। परंतु एक रोगी के लिए यह अमृतमय भोजन विष का काम करता है। इसलिए सब व्यक्तियों को समान भोजन नहीं देना चाहिए। शारीरिक स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए व्यायाम और निंद्रा की व्यवस्था में भी समानता नहीं हो सकती।

वैदिक व्यवस्था में मनुष्य को चार वर्ण और चार आश्रमों में विभाजित किया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-ये चार वर्ण हैं और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास- ये चार आश्रम हैं। वर्णाश्रमरूप में इन सबके कर्तव्य और अधिकार भिन्न-भिन्न हैं। इनके अतिरिक्त और अनेक प्रकार के संबंध हैं, यथा- स्वामी- सेवक, गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, बंधु-बांधव, वृद्ध-बालक और अधिकारी और मातहत। जब हममें प्रत्येक अपने-अपने पद के अनुसार, अर्थात यथायोग्य रीति से व्यवहार करता है तो कोई विरोध उत्पन्न नहीं होता और समाज में शांति बनी रहती है, परंतु अपने-अपने अधिकार का अतिक्रमण करते ही संघर्ष की स्थिति बन जाती है। चारों वर्णों के कर्तव्य कर्म और गुण वर्णन करते हुए महर्षि दयानंद लिखते हैं- 'जिस-जिस पुरुष में जिस-जिस के गुण-कर्म हों उस-उस वर्ण का अधिकार देना। ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नतिशीलि होते हैं, क्योंकि उत्तम वर्णों को भय होगा कि जो हमारे संतान मूर्खत्वादि दोषयुक्त होंगे तो शूद्र हो जाएंगे और संतान भी डरते रहेंगे कि जो हम उक्त चाल-चलन और विद्यायुक्त न होंगे तो शूद्र होना पड़ेगा और नीच (निम्न) वर्णों को उत्तम वर्णस्थ होने के लिए उत्साह बढ़ेगा। विद्या और धर्म के प्रचार का अधिकार ब्राह्मण को देना, क्योंकि वे पूर्ण विद्यावान और धार्मिक होने से उस काम को यथायोग्य कर सकते हैं। क्षत्रियों को राज्य के अधिकार देने से कभी राज्य की हानि व विघ्न नहीं होता। पशु-पालनादि का अधिकार वैश्यों ही को होना योग्य है, क्योंकि वे इस

सामाजिक जीवन की सफलता, सुदृढ़ता और विकास प्रीतिपूर्वक व्यवहार पर निर्भर करता है। प्रीति या प्रेम एक संवेग है जो एक को दूसरे से जोड़ता है या बांधता है। यह सीमेंट का काम करता है, जो एक ईंट को दूसरी ईंट से जोड़कर एक मजबूत दीवार का निर्माण करता है। बिना सीमेंट के ईंटों को एक-दूसरे के ऊपर रखते जाइए इससे एक सुदृढ़ दीवार न बन सकेगी। एक हल्के धक्के में सब ईंटें नीचे गिर जाएगी। इसी प्रकार से हजारों व्यक्तियों को एक स्थान पर इकट्ठा कर दीजिए। बिना प्रेम के उनमें से न परिवार बन सकेगा, न कोई अन्य सामाजिक संगठन, इसलिए हमें सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करना चाहिए। हमारा यह व्यवहार मनुष्य जाति तक सीमित न रहे। हमें पशुओं और पक्षियों से भी प्रेम करना चाहिए। यह तो मानना पड़ेगा कि मनुष्य के विकास में पशु-पक्षियों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। दूध और अन्न का उपार्जन बिना पशुओं के सम्भव नही है। यह भी सत्य है कि जहां प्रेम होता है, वहां ईर्ष्या-द्वेष और हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं रहता, अतः यह नियम हमें, यह भी आदेश देता है कि नरवध और पशुवध से भी हमें बचना चाहिए। इस प्रकार के सातवें नियम के ' सबसे प्रीतिपूर्वक' शब्दों से स्पष्ट होता है कि संसार भर के जितने भी मनुष्य है उनसे बिना जाति, मत, महज, भाषा, देश, वर्ण, ऊंचे-नीचे, अपने-पराये के भेदभाव का प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। इसका फल यह होगा कि समाज में से वैर, शत्रुता और घृणा स्वतः मिट जाएंगे, क्योंकि- करूं में दुश्मनी किससे, अगर दुश्मन भी हो अपना। मुहब्बत ने नहीं छोड़ी जगह दिल में अदावत की।। इसके अनंतर इस नियम में 'धर्मानुसार' व्यवहार करने का विधान है। महर्षि दयानंद ने इस पद का अर्थ सत्य और असत्य का विचार किया है। धर्मानुसार की व्याख्या आर्य समाज के पांचवें नियम में देखिए। अपने बच्चे के प्रति प्रेम करना स्वाभाविक है। कभी-कभी ऐसा देखने में आता है कि पिता मोहवश अपने पुत्र के अपराध पर उसे दंडित न कर उसके कर्म की उपेक्षा कर देता है। यह नियम आदेश देता है कि सत्यासत्य का विचार कर, पुत्र को दंड अवश्य देना चाहिए। अन्यथा समाज में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी। सत्य कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति को बिना पक्षपात के अपने और पराए का विचार न करते हुए समान रूप में उसके शुभाशुभ कर्म का फल अवश्य मिलना चाहिए। आर्यो का व्यवहार प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार तो होना ही चाहिए, परंतु वह यथायोग्य भी हो। नियम का यह अंश बहुत महत्वपूर्ण और विचारणीय है। मनुष्यों में शारीरिक और मानसिक दृष्टि से भिन्नता होता है। सबका स्वभाव और प्रवृत्ति समान नहीं होती। अतएव सबके साथ समान व्यवहार करना अनुचित है। खीर का भोजन स्वादिष्ट और शक्तिवर्धक है। परंतु एक रोगी के लिए यह अमृतमय भोजन विष का काम करता है। इसलिए सब व्यक्तियों को समान भोजन नहीं देना चाहिए। शारीरिक स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए व्यायाम और निंद्रा की व्यवस्था में भी समानता नहीं हो सकती। वैदिक व्यवस्था में मनुष्य को चार वर्ण और चार आश्रमों में विभाजित किया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-ये चार वर्ण हैं और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास- ये चार आश्रम हैं। वर्णाश्रमरूप में इन सबके कर्तव्य और अधिकार भिन्न-भिन्न हैं। इनके अतिरिक्त और अनेक प्रकार के संबंध हैं, यथा-स्वामी- सेवक, गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, बंधु-बांधव, वृद्ध-बालक और अधिकारी और मातहत।

काम को अच्छे प्रकार से कर सकते हैं। शूद्र को सेवा का अधिकार इसलिए है कि वह विद्यारहित मूर्ख होने से विज्ञान संबंधी काम कुछ भी नहीं कर सकता, किंतु शरीर के काम सब कर सकता है।'

- सत्यार्थ प्रकाश, चतुर्ण समुल्लास

वर्ण–व्यवस्था से यह तो स्पष्ट है कि समाज में बुद्धि, विद्या, बल और धन की दृष्टि से भेद बना ही रहेगा। यदि चारों से कभी कोई अपराध हो जाता है, तो उस दशा में उन चारों को समाज–दण्ड मिले अथवा समाज में उनकी हैसियत के अनुसार यथायोग्य, अर्थात् एक ही अपराध के लिए दंड में भिन्नता रहे। इस संबंध में महर्षि दयानंद का लेख विचारणीय है। मनुस्मृति के आधार पर महर्षि लिखते हैं–

'और वैसे ही जो कुछ विवेकी होकर चोरी करे उस शूद्र को चोरी से आठ गुणा, वैश्य को सोलह गुणा, क्षत्रिय को बत्तीस गुण, ब्राह्मण को चौंसठ गुणा व सौ गुणा अथवा एक सौ अट्ठाईस गुणा दण्ड होना चाहिए, अर्थात् जिसका जितना ज्ञान और जितनी प्रतिष्ठा अधिक हो, उसको अपराध में उतना ही अधिक दण्ड होना चाहिए।'

'इसी प्रकार साधारण मनुष्य से राजा को सहस्त्र गुणा दण्ड होना चाहिए।'

- सत्यार्थ प्रकाश, षष्ठ समुल्लास

यथायोग्य व्यवहार का यह अनूठा नमूना है। काश कि वर्तमान सरकारें इस व्यवस्था को स्वीकार कर लें। यदि ऐसा होने लगे तो निश्चित है संसार से अन्याय, अत्याचार, चोरी, डकैती, हत्या, अपहरण आदि अपराध बहुत अंशों में मिट सकते हैं, 'क्योंकि यदि प्रजापुरुषों से राजपुरुषों को अधिक दण्ड न होवे तो राजपुरुष प्रजापुरुषों का नाश कर देवें। जैसे सिंह अधिक और बकरी थोड़े दण्ड से ही वश में आ जाती है, इसलिए राजा से लेकर छोटे–से छोटे भृत्यपर्यन्त राजपुरुषों को अपराध में प्रजा–पुरुषों से अधिक दण्ड होना चाहिए।' **- वही, षष्ठसमुल्लास**

प्रभु की रचना को देखो

डॉ. महेश विद्यालंकार

यह सारा संसार प्रभु का सुंदर काव्य है। इस काव्य के माध्यम से रचयिता का सहज ही बोध किया जा सकता है। सभी धर्मग्रंथ-वेद, उपनिषद, और दर्शन तथा ऋषि, मुनि, योगी, संत विद्वान आदि पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि वह प्रभु सर्वत्र जड़ चेतन में ओत-प्रोत है। उसका अनुभव करने के लिए ज्ञान-चक्षु खोलने की आवश्यकता है। सृष्टि में विधाता अपने कर्मों में सर्वत्र प्रकट हो रहा है। यह सारी रचना अपने निर्माता की ओर संकेत कर रही है। इस सृष्टि के निर्माण और व्यवस्था में कोई अज्ञात चेतन शक्ति निरंतर क्रियाशील है। प्रभु ने सृष्टि-रचना करके अपना कर्म अल्पज्ञ जीव के सामने रख दिया। किंतु हम फूल में फूल के बनाने वाले को नहीं देख पा रहे हैं। शरीर में शरीर के चलाने वाले को नहीं अनुभव कर पा रहे हैं।

उस जगन्नियन्ता शिल्पी की संसार में कैसी-कैसी विचित्र, अद्भुत एवं चमत्कारिक नियम और व्यवस्थाएं चल रही हैं, कि मानव-बुद्धि हैरत में रह जाती है। स्वतः ही दिन-रात हो रहे हैं। जड़-चेतन सभी परिवर्तन के चक्र में घूम रहे हैं। वैज्ञानिक कह रहे हैं, कि संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य और चमत्कार है कि पेट-रूपी फैक्ट्री में सब कुछ स्वभावतः हो रहा है। रोटी रक्त बन रही है, रोटी विचार बन रही है और रोटी वासना बन रही हैं, अपने आप सब कुछ रूपान्तरण हो रहा है।

शरीर की बनावट, जोड़, खून की नालियां, भोजन पचाने के औजार, हृदय में रुधिर-शुद्धि की प्रक्रिया आदि में प्रभु-सत्ता के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं।

सृष्टि का परिवर्तन ईश्वर-इच्छा पर निर्भर है। उसी सार्वभौम चेतना के अधीन, सूर्य, चन्द्र, ग्रह-उपग्रह आदि नियम से उदय और अस्त हो रहे हैं। यह सारा ब्रह्माण्ड बिना किसी दृश्यमान सहारा के चल रहा है। खेल में गेंद गोल से बाहर हो जाती है, किंतु आकाश में इतने असंख्य तारागण हैं; सभी परस्पर टकराते नजर नहीं आते हैं। संध्या का प्रत्येक मंत्र विस्तृत व्यापक परमेश्वर का मानचित्र प्रस्तुत करता है। पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, ऊपर-नीचे सभी ओर उस सुंदरतम की महफिल सजी है। उसी का चारों ओर नजारा नजर आता है- **ओ३म् उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम्।।**

पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि अपनी जीवन-यात्रा को चलाने के लिए स्वयं समर्थ हैं। उनके जीवन, उत्पत्ति व रहन-सहन का प्रचार विचित्र एवं आश्चर्यजनक है। पशु-पक्षी, जलचर, नभचर, कीट आदि की रंग-बिरंगी साज-सज्जा और खान-पान को देखकर किसी सूत्रधार का बोध हो आना स्वाभाविक है। मधु-मक्खियां पुष्पों में से मधु किस कारीगरी से खींचती हैं। कोई वैज्ञानिक यह सिद्ध नहीं कर सकता है कि इस फूल का मधु निकाल लिया गया है और दूसरे का नहीं। किस प्रकार मधुमक्खी शहद के छिद्रों को बुद्धिमत्ता से मोम द्वारा बंद कर देती है। किसी रेखागणित के विद्वान से पूछो- कितना जटिल एवं असंभव कार्य है। इसलिए इस सत्य को उच्च स्वर से कहा- **पूर्णमदः पूर्णमदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।**

ब्रह्म पूर्ण है, पूर्ण ब्रह्म सेप्रकट यह जगत भी पूर्ण है। पूर्ण से ही पूर्ण बनता है। संसार की विलक्षण रचना जगत में उत्पन्न प्रत्येक पदार्थ से प्रकट हो रही है। वृक्षों, वनस्पतियों और औषधियों पर दृष्टि जाती है तो गणना लघु हो जाती है। कैसे विचित्र ढंग से नींबू में खट्टापन, ईख में मिठास, मिर्च में कड़वाहट, प्रत्येक पौधा भूमि से स्वाद ले रहा है। वेद परमात्मा की अद्भुत व्यवस्था को देखकर कह रहा है-

सभी धर्मग्रंथ-वेद, उपनिषद, और दर्शन तथा ऋषि, मुनि, योगी, संत विद्वान आदि पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि वह प्रभु सर्वत्र जड़ चेतन में ओत-प्रोत है। उसका अनुभव करने के लिए ज्ञान-चक्षु खोलने की आवश्यकता है। सृष्टि में विधाता अपने कर्मों में सर्वत्र प्रकट हो रहा है। यह सारी रचना अपने निर्माता की ओर संकेत कर रही है। इस सृष्टि के निर्माण और व्यवस्था में कोई अज्ञात चेतन शक्ति निरंतर क्रियाशील है। प्रभु ने सृष्टि-रचना करके अपना कर्म अल्पज्ञ जीव के सामने रख दिया। कितु हम फूल में फूल के बनाने वाले को नहीं देख पा रहे हैं। शरीर में शरीर के चलाने वाले को नहीं अनुभव कर पा रहे हैं। उस जगन्नियन्ता शिल्पी की संसार में कैसी-कैसी विचित्र, अद्भुत एवं चमत्कारिक नियम और व्यवस्थाएं चल रही हैं, कि मानव-बुद्धि हैरत में रह जाती है। स्वतः ही दिन-रात हो रहे हैं। जड़-चेतन सभी परिवर्तन के चक्र में घूम रहे हैं। वैज्ञानिक कहा रहे हैं, कि संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य और चमत्कार है कि पेट-रूपी फैक्ट्री में सब कुछ स्वभावतः हो रहा है। रोटी रक्त बन रही है, रोटी विचार बन रही है और रोटी वासना बन रही हैं, अपने आप सब कुछ रूपान्तरण हो रहा है। शरीर की बनावट, जोड़, खून की नालियां, भोजन पचाने के औजार, हृदय में रुधिर-शुद्धि की प्रक्रिया आदि में प्रभु-सत्ता के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। सृष्टि का परिवर्तन ईश्वर-इच्छा पर निर्भर है। उसी सार्वभौम चेतना के अधीन, सूर्य, चन्द्र, ग्रह-उपग्रह आदि नियम से उदय और अस्त हो रहे हैं। यह सारा ब्रह्माण्ड बिना किसी दृश्यमान सहारा के चल रहा है। खेल में गेंद गोल से बाहर हो जाती है, कितु आकाश में इतने असंख्य तारागण हैं; सभी परस्पर टकराते नजर नहीं आते हैं।

याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधात्। जो जहां जिसको जब चाहिए स्वत: ही पहुंच रहा है। मनुष्य शरीर की आंतरिक रचना इतनी परस्पर सम्बद्ध है और इतनी सुंदर व नियमित है कि जिसे देखकर वैज्ञानिक एवं ज्ञानी चकित हैं। शरीर में क्या-क्या कमाल हो रहे हैं। इसके अंदर प्रभु ने एक सुंदर डिस्पेंसरी लगा दी है, जो निरंतर स्वच्छता और नीरोगता का ध्यान रखती है। शरीर अपनी टूट-फूट तथा रख-रखाव की व्यवस्था स्वयं कर रहा है।

किसी को पता नहीं है कि अंदर क्या हो रहा है। वह शिल्पी आंखों की काली पुतली के लिए कहां से मसाला लाता है? दांतों के लिए कहां से कठोर वज्र एकत्र करता है? कानों के लिए इतनी कोमल बारीक मशीन कहां से बनवाता है? जिह्वा पर स्वाद का कौन-सा कैमिकल लगवाता है? हृदय के पम्प में कौन से मेक की मशीनरी फिट करता है, जो निरंतर चल रही है? हाथों, पैरों के जोड़ों में कौन-सी क्वालिटी की ग्रीस देता है?

जब फूल-पौधों की ओर नजर जाती है, तो चित्र-विचित्र तथा रंग-बिरंगी छटा धरे ये सभी अपने निर्माता उस महान कलाकार की ओर संकेत कर रहे प्रतीत होते हैं। कैसी अनूठी कारीगरी से रंग-रूप, साज-सज्जा, मधु-सुगंध, कटाई, छटाई, आदि की व्यवस्था की है उसने। प्रत्येक फूल की सुगंध अलग है। यह पुष्प जगत हंस-हंसकर, झूम-झूमकर कह रहा है- 'प्रभु को हममें देखो, वह हमारे माध्यम से हंस रहा है।'

बहुरंगी वनस्पति-जगत में इतना वैविध्य एवं नानात्व है कि मानव की बुद्धि चकित हो जाती है। प्रभु का सौन्दर्य-दर्शन मानव-चिंतन से बहुत परे है, किसी कवि ने कितना सुंदर कहा है-

हर रंग में जलवा है तेरी कुदरत का।
जिस फूल को सूंघता हूं बू तेरी है।।
समाया है जब से नजरों में तू मेरी।
जिधर देखता हूं, उधर तू ही तू है।।

परमात्मा ने सृष्टि युक्ति-युक्त बनाई है। आंख ठीक नाक के ऊपर रखी है। यदि नाक के नीचे रहती तो बड़ा कष्ट होता। नाक का सारा मल आंखों में आता रहता। आंखें नीचे होती तो देख न पातीं। नाक और मुख के बीच बहुत अंतर हो जाता। प्रत्येक वस्तु को परमात्मा ने यथा-स्थान रखा है।

प्रभु आनंद स्वरूप हैं। उनके आनंद की अनुभूति आत्मा में होती है। मानव प्राणी जगत की कर्म व्यवस्था को चित्र-विचित्र सृष्टि में चल रही नियमित नियम-व्यवस्था को देख नहीं पा रहा है। यही उसकी त्रासदी एवं विडम्बना है। आज मानव बहिर्जगत और शरीर के लिए सब कुछ सुख भोग के साधन जुटा रहा है। अर्न्तजगत सूना, खोखला तथा नीरस होता जा रहा है। इसलिए मानव सब कुछ पाकर भी अतृप्त, असंतुष्ट है, अभाव एवं चिंता की ओर बढ़ रहा है। विज्ञान व भौतिक साधन मन, बुद्धि, चित्त और आत्मा के लिए कुछ नहीं दे पा रहे हैं। इसी कारण सर्वत्र भटकन है। अतृप्ति बढ़ती जा रही है। सहज स्वाभाविक, प्रसन्नता, प्रेम, शांति एवं आनंद छूटता जा रहा है। मानव मशीन बनकर दौड़ा जा रहा है। मूल जीवन का लक्ष्य छूटता जा रहा है।

वेद, शास्त्र, धर्मग्रंथ, संत, ऋषि-मुनि आदि पुकार-पुकार कर कह रहे हैं- 'मानव! यदि तू अपना कल्याण और सुख-शांति चाहता है, तो प्रभु की ओर लौट। उस नियामक की रचना, व्यवस्था, नियम-परिवर्तन, सृष्टि विज्ञान आदि का चिंतन-मनन कर। अपने ज्ञान-चक्षुओं को खोलकर देख वह सर्वत्र विद्यमान है और उसका सर्वत्र साम्राज्य है। जिसे तू बाहर खोज रहा है, वह तेरे अन्तस् में है। मात्र अज्ञान के पर्दे को हटाने की आवश्यकता है।

OO

स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा सामाजिक सुधार

- कई सामाजिक बुराइयों का विरोध करने के साथ-साथ आर्य समाज ने हिन्दू समाज के लोगों के लिए कई सेवाएं प्रदान की।
- स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने जाति व्यवस्था और समाज में ब्राह्मणों की श्रेष्टता का विरोध किया।
- उन्होंने ब्राह्मणों के एकाधिकार को चुनौती दिया और उन्हें वेदों को पढ़ने की सलाह दी साथ ही उन्हें जाति, धर्म, रंग और छुआ छूत के बिना लोगों को समर्थन देने की सलाह दी।
- महिलाओं के साथ अन्याय के खिलाफ लड़े और महिलाओं की शिक्षा पर उन्होंने ज़ोर दिया। दयानंद सरस्वती जी ने बाल विवाह, और सती प्रथा का भी घोर विरोध किया।
- आर्य समाज ने कई शैक्षणिक संस्थान शुरू किया जैसे - गुरुकुल, कन्या गुरुकुल, स्कूल, और कॉलेज जिससे पुरुष और महिलाओं को शिक्षित बनाया जा सके। इन शैक्षणिक संस्थानों ने हिन्दू धर्म और समाज की रक्षा भी की और आधुनिक युग में ज्ञान को बढ़ाने के क्षेत्र में भी बहुत कार्य किया।
- आर्य समाज कभी भी राजनीति से नहीं जुड़ा और इस समाज ने हमेशा राष्ट्रीय चेतना पर ध्यान दिया।
- स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने हमेशा विदेशी वस्तुओं को नकारा और स्वदेशी यानि की भारत में बने उत्पादों का उपयोग करने की बात भी लोगों से कही।
- स्वामी दयानंद सरस्वती जी वेदों के सिधान्तों पर 'स्वराज' का नारा भी सबसे पहले उठाया जब किसी भारतीय नेता ने इसके विषय में सोचा भी नहीं था।

OO

अतिथि यज्ञ के होता बनें

परोपकारिणी सभा, अजमेर

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा आर्य जगत की एक मात्र ऐसी संस्था है जो सामूहिक सहयोग से ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कृत संकल्प हैं।

सभा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। निरंतर अबाध गति से ऋषि उद्यान को आकर्षक एवं जन उपयोगी बनाने हेतु नव निर्माण करा रही है, वेद प्रचार पूरे देश में संचालित कर रही है, वेदों का एवं ऋषि ग्रंथों का प्रकाशन निरंतर जारी है।

प्रातः एवं सायं दैनिक यज्ञ– प्रवचन, वेद-पाठ, उपनिषद्, दर्शनादि शास्त्रों की कथा द्वारा वैदिक धर्म का कार्य नियमित रूप से आश्रम में चलता है। **गुरुकुल**– आर्ष पद्धति से संचालित गुरुकुल में पढ़ रहे ब्रह्मचारी जो साधना एवं समाज सुधार का लक्ष्य लेकर अध्ययनरत हैं उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नि:शुल्क की जाती है। **अतिथि सेवा**– अतिथियों को यथोचित सुविधा प्रदान करने हेतु सभा पूर्ण रूपेण प्रयासरत है एवं सभी सुविधाएं आवास, प्रातराश, भोजन की व्यवस्था नि:शुल्क की जातीहै। **गोशाला**– गोशाला में चालीस के लगभग पशु हैं। इससे अधिक का स्थान नहीं है। आश्रमवासियों को गोशाला में उत्पादित दुग्ध का नि:शुल्क वितरण किया जाता है। **वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम**– वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रहकर साधनारत वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सभा द्वारा नि:शुल्क की जाती है। स्वाध्याय एवं साधना की व्यवस्था है। **विशाल पुस्तकालय**– इसमें दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है, सभा द्वारा शोधकर्ता छात्रों को शोध कार्य हेतु ग्रंथ नि:शुल्क प्रदान किए जाते हैं जिनका लाभ स्वाध्यायशील व्यक्ति भी उठा सकते हैं। **व्यायामशाला**– योग्य शिक्षक द्वारा नगर के युवाओं को ऋषि उद्यान में नि:शुल्क व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाता है। सभा द्वारा नियुक्त व्यायाम शिक्षक आसपास के गांवों से भी आर्यवीर दल का प्रशिक्षण शिविरों में प्रदान करते हैं। ये सभी क्रियाकलाप अनेक पावन उदार सहयोग से ही संभव है। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लंबे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन दस रुपये अथवा प्रतिवर्ष पांच हजार रुपये की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है। ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि पांच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उसका उल्लेख आश्रम केसूचना पट्ट पर किया जा सकेगा।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपये आग में पटाके फोड़कर जलाते हैं असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोककर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को

सभी क्रियाकलाप अनेक पावन उदार सहयोग से ही संभव है। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय। सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लंबे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन दस रुपये अथवा प्रतिवर्ष पांच हजार रुपये की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है। ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा शिविरों के आयोजन द्वारा जन सामान्य को ऋषियों की जीवन प्रणाली सिखा रही है। आप इस योजना में स्थायी सदस्य बनकर ऋषि का संकल्प संसार का उपकार की पूर्ति में एक स्तम्भ बनकर सभा को सम्बल प्रदान कर सकते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतंत्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान 80जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा। अत: आपसे निवेदन है कि आप भी अतिथि यज्ञ के होता बनिये।

अध्यात्मवाद

कृष्णचन्द्र गर्ग, पंचकूला, हरियाणा

आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, इन दोनों का आपस में संबंध क्या है- इस विषय का नाम अध्यात्मवाद है। आत्मा और परमात्मा दोनों ही भौतिक पदार्थ नहीं हैं। इन्हें आंख से देखा नहीं जा सकता, कान से सुना नहीं जा सकता, नाक से सूंघा नहीं जा सकता, जिह्वा से चखा नहीं जा सकता, त्वचा से छुआ नहीं जा सकता।

परमात्मा एक है, अनेक नहीं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि उसी एक ईश्वर के नाम हैं। (एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। ऋग्वेद: १-१६४-४६) अर्थात् एक ही परमात्मा शक्ति को विद्वान लोग अनेक नामों से पुकारते हैं। संसार में जीवधारी प्राणी अनंत हैं, इसलिए आत्माएं भी अनंत हैं। न्यायदर्शन के अनुसार ज्ञान, प्रयत्न, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख- ये छः गुण जिसमें हैं, बाकी चार गुण इसमें शरीर के मेल से आते हैं। आत्मा की उपस्थिति के कारण ही यह शरीर प्रकाशित है, नहीं तो मुर्दा अप्रकाशित और अपवित्र है। यह संसार भी परमात्मा की विद्यमानता के कारण ही प्रकाशित है।

आत्मा और परमात्मा-दोनों ही अजन्मा व अनन्त हैं। ये न कभी पैदा होते हैं और न ही कभी मरते हैं, ये सदा रहते हैं। इनको बनाने वाला कोई नहीं है। आत्मा परमात्मा का अंश नहीं है। हर आत्मा एक अलग आर स्वतंत्र सत्ता है। आत्मा अणु है, बेहद छोटी है। परमात्मा आकाश की तरह सर्वव्यापक है। आत्मा का ज्ञान सीमित है, थोड़ा है। परमात्मा सर्वज्ञ है, वह सब कुछ जानता है। जो कुछ हो चुका है और हो रहा है, सब कुछ उसके संज्ञान में है। अंतर्यामी होने से वह सभी के मनों में क्या है- यह भी जानता है। आत्मा की शक्ति सीमित है, थोड़ी है, परंतु परमात्मा सर्वशक्तिमान है। सृष्टि को बनाना, चलाना, प्रलय करना- आदि अपने सभी काम करने में वह समर्थ है। पीर, पैगम्बर, अवतार आदि नाम से कोई एजेंट या बिचौलिए उसने नहीं रखे हैं। ईश्वर सभी काम अपने अंदर से करता है, क्योंकि उसके बाहर कुछ भी नहीं है। ईश्वर जो भी करता है, वह हाथ-पैर आदि से नहीं करता, क्योंकि उसके ये अंग है ही नहीं। वह सब कुछ इच्छा मात्र से करता है।

ईश्वर आनंद स्वरूप है। वह सदा रस आनंद में रहता है। वह किसी से राग-द्वेष नहीं करता। वह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से परे है। ईश्वर की उपासना करने से अर्थात् उसके समीप जाने से आनंद प्राप्त होता है, जैसे सर्दी में आग के पास जाने से सुख मिलता है। ईश्वर निराकार है। उसे शुद्ध मन से जाना जा सकता है, जैसे हम सुख-दुःख मन में अनुभव करते हैं।

यह आत्मा जब मनुष्य शरीर में होती है, तब वह कार्य करने में स्वतंत्र रहती है। उस समय किए कार्यों के अनुसार ही उसे परमात्मा सुख, दुःख तथा अगला जन्म देता है। दूसरी योनियां या तो किसी दूसरे के आदेश पर चलती हैं या स्वभाव से काम करती हैं। उनमें विचार शक्ति नहीं होती, इसलिए उन योनियों में की गई क्रियाओं का उन्हें अच्छा या बुरा फल नहीं मिलता। वे केवल भोग योनियां हैं जो पहले किए कर्मों का फल भोग रही हैं। मनुष्य योनि में कर्म और भोग दोनों का मिश्रण है। मनुष्य स्वतंत्र रूप से कर्म करता है और कर्म फल भी भोगता है। मैं आत्मा हूं, शरीर हूं। शरीर मेरा संसार में व्यवहार करने का साधन है। कर्ता और भोक्ता आत्मा है। सुख-दुःख आत्मा को होता है। जीवात्मा न स्त्रीलिंग है, न पुलिंग है और न ही नपुंसक है। यह जैसा शरीर पाता है, वैसा कहा जाता है। (श्वेताश्वतर उपनिषद्) ईश्वर की पूजा ऐसे नहीं की जाती, जैसे मनुष्यों की पूजा अर्थात् सेवा सत्कार किया जाता है। ईश्वर की आज्ञा का पालन अर्थात् और न्याय का आचरण-यही ईश्वर की पूजा है।

कठोपनिषद् में मनुष्य-शरीर की तुलना घोड़ा गाड़ी से की गई है। इसमें आत्मा गाड़ी का मालिक है अर्थात् सवार है। बुद्धि सारथी अर्थात् कोचवान है, मन लगाम है, इन्द्रियां घोड़े हैं। इन्द्रियों के विषय वे मार्ग है, जिन पर इंद्रियां रूपी घोड़े दौड़ते हैं। आत्मा रूपी सवार अपने लक्ष्य तक तभी पहुंचेगा, तब बुद्धि रूपी सारथी मन रूपी लगाम को अपने वश में रखकर इन्द्रियां रूपी घोड़ों को सन्मार्ग पर चलाएगा।

उपनिषद् में घोड़ा गाड़ी को रथ कहा गया है और रथ पर सवार को रथी। मनुष्य शरीर में आत्मा रथी है। जब आत्मा निकल जाती है, तब शरीर अरथी रह जाता है।

परमात्मा हम सबका माता, पिता और मित्र है। हम सब प्राणियों का भला चाहता है। जब मनुष्य कोई अच्छा काम करने लगता है तो उसे आनंद, उत्साह, निर्भयता महसूस होती है। वह परमात्मा की तरफ से होता है, और जब वह कोई बुरा काम करने लगता है, तब उसे भय, शंका, लज्जा महसूस होती है। वह भी परमात्मा की तरफ से ही होता है। ○○

ईश्वर आनंद स्वरूप है। वह सदा रस आनंद में रहता है। वह किसी से राग-द्वेष नहीं करता। वह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से परे है। ईश्वर की उपासना करने से अर्थात् उसके समीप जाने से आनंद प्राप्त होता है, जैसे सर्दी में आग के पास जाने से सुख मिलता है। ईश्वर निराकार है। उसे शुद्ध मन से जाना जा सकता है, जैसे हम सुख-दुःख मन में अनुभव करते हैं। यह आत्मा जब मनुष्य शरीर में होती है, तब वह कार्य करने में स्वतंत्र रहती है। उस समय किए कार्यों के अनुसार ही उसे परमात्मा सुख, दुःख तथा अगला जन्म देता है। दूसरी योनियां या तो किसीदूसरे के आदेश पर चलती हैं या स्वभाव से काम करती हैं। उनमें विचार शक्ति नहीं होती, इसलिए उन योनियों में की गई क्रियाओं का उन्हें अच्छा या बुरा फल नहीं मिलता।

राष्ट्र का आधुनिक परिवेश एवं आर्यसमाज

बी.एस शर्मा
कौशाम्बी, गाजियाबाद

हमारे राष्ट्र भारत में अनेक राष्ट्र भक्त अग्रणी नेता, विद्वान संतों की भरमार है। वे सभी ऊंच-नीच की भावना को समाप्त कर सामाजिक न्याय की बातें करते हुए एक मानव धर्म को अपना संदेश देते हुए 'सर्वे भवंतु सुखिनः' अथवा 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का उद्घोष भी करते हैं।

आप सब इस बात से सहमत होंगे कि पराधीनता की बेढ़ियां कटे सत्तर साल की एक लंबी अवधि के पश्चात भी हमारा राष्ट्र अशांति से त्रस्त है। भले ही हम वैज्ञानिक एवं आर्थिक प्रवृत्ति तथा आधुनिक सुख-सुविधाओं की बात करते हैं, किंतु अभी भी व्यक्ति स्वयं को असहाय पाता है। शांति केवल पैसे अथवा सम्पन्नता से ही प्राप्त नहीं होती। अगर ऐसा होता तो अमेरिका जो विश्व के संपन्न राष्ट्रों में माना जाता है, वहां के नागरिक अशांति की अग्नि में नहीं जल रहे होगे। 'रीडर डाईजेस्ट' नामक पत्रिका में एक बार पढ़ने को मिला था कि वहां सदाचार व ईमानदारी पर अपराध और दुराचार पूर्ण रूप से अपना शासन जमाये हुए हैं। वैसे तो यह हालात यूरोप के साथ-साथ अन्य देशों में भी अपने पांव पसार चुके हैं। किंतु हृदय पर आघात तब पहुंचाता है जब हमारे राष्ट्र का नाम 'जो कभी विश्व का गुरु हुआ करता था' का नाम भी इस पंक्ति में देखने को मिलता है। ऐसा लगता है कि हमसे कहीं भूल हुई है।

हमारे राष्ट्र भारत में अनेक राष्ट्र भक्त अग्रणी नेता, विद्वान संतों की भरमार है। दूरदर्शन पर चौबीस घंटे किसी नकिसी संत, महात्मा अथवा विद्वान के प्रवचन सुनने को मिलते ही रहते हैं। वे सभी ऊंच-नीच की भावना को समाप्त कर सामाजिक न्याय की बातें करते हुए एक मानव धर्म को अपना संदेश देते हुए 'सर्वे भवंतु सुखिनः' अथवा 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का उद्घोष भी करते हैं। किंतु उनके व्यवहार में ऐसा संभव हो ही नहीं रहा है। निष्पक्ष रूप से अगर बात रखी जाए तो विभिन्न राजनैतिक पार्टियों ने समाज को विभिन्न जनमना जातियों के आधार पर बांटकर देख की प्रगति को प्रथम स्थान से खिसकाकर आपस में वैमनस्य, भेदभाव एवं झगड़े कराकर सांप्रदायिक आग में झोंकने का काम किया है।

पहले भी भारत में अनेक छोटे-बड़े आंदोलन हुए किंतु वे हमारी आर्य संस्कृति को नष्ट नहीं कर सके। इसमें सर्वाधिक योगदान आर्य समाज का ही रहा। उदाहणार्थ दृष्टव्य है कि सन् 1857 की प्रथम स्वतंत्रता की क्रांति ने भी आर्य समाज का योगदान रहा। इस स्वतंत्रता की क्रांति में बलिदान दिये जाने के बावजूद भी इसकी असफलता का एकमात्र कारण यह बताया गया कि विचार एक नहीं थे। इसका पर्दाफाश किया महर्षि विरजानंद ने जो महर्षि दयानंद सरस्वती के गुरू थे।

महर्षि दयानंद सरस्वती चाहते थे कि मराठों और राजपूतों के एक भाग में रहने वालों को दूसरे भाग में रहने वालों के निकट परंतु उन्होंने देखा कि इन लोगों के तो विचार ही आपस में नहीं मिलते। कहीं जातियों का प्रश्न, कहीं विरादरियों का, कहीं छुआछूत का, कहीं छोटेपन और बड़ेपन का। उन्होंने देखा कि लोग एक-दूसरे के हाथ का बना खाना नहीं खाते, अपनी जाति वाले के सिवाय किसी दूसरी जाति वाले को अपना नेता या सरकार मानने को तैयार नहीं। तीन वर्ष तक गंगोत्री से गंगासागर तक, राजस्थान से रामेश्वर तक घूमते फिरे की किसी तरह सब लोगां को मिलाकर काम करने की प्रेरणा दे सकें परंतु निराश हो गए। कोई कितना भी बांटे परंतु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सुखदायक होता है। इसलिए 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' की प्रेरणा लोकमान्य तिलक जी को अमरग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश के आठवें समुल्लास से मिली थी। आधुनिक समय में हमारा राष्ट्र निरंतर प्रगति पथ पर अग्रसर है। शताब्दियों में ऐसे विरले महापुरुष मिलते हैं अथवा दूसरे शब्दों में परमेश्वर ऐसी विभूतियों को भेजता है जो समाज में, राष्ट्र के लिए कार्य करते हुए अमर हो जाते हैं।

ज्ञात हो कि एक समय ऐसा आया कि जो हमारे शासक भ्रष्टाचार में आकंठ लिप्त थे, समय ने करवट ली और युवा शक्ति ने हुंकार भरी और राष्ट्र को एक नई संस्कृति की दिशा मिली। राष्ट्र के प्राणियों को दुर्गुणों, कुविचारों एवं कुसंस्कारों से मुक्त कर विभिन्न कार्यरत आर्यसमाज उनके हृदय में सद्गुण और सद्विचार भर रही है। बिना किसी संप्रदायिक आधार के बौद्धिक एवं विवेक के आधार पर राष्ट्र के नागरिक अपने अंदर आत्मसात् मानवीय शक्ति को पहचान सकें और वर्ग जाति तथा धर्म एवं संप्रदाय की क्षुद्र दीवारों को गिराकर एक आदर्श आर्य एवं श्रेष्ठ राष्ट्र की रचना कर सकें। यद्यपि आर्य समाज के लिए यह एक कठिन रास्ता है क्योंकि समय के प्रभाव से कोई अछूता नहीं रहता।

आर्य समाज में भी कुछ ऐसे तत्व कहीं-कहीं पर प्रवेश कर गए हैं जो अपने को पदासीन कराने अथवा पगड़ी पहनने तक ही सीमित रहते हैं। जबकि महर्षि दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना करते समय सत्य, न्याय एवं पुरुषार्थ का महत्व-प्रतिष्ठापित कर मनुष्य मात्र को आत्मनिर्माण का सीधा सच्चा रास्ता दिखाया था। सब काम धर्मानुसार यथायोग्य सत्य और असत्य को विचार करके करने का प्रावधान किया था। आर्य समाज धर्म, जाति, संप्रदाय आदि की संकीर्ण भावनाओं से मुक्त एक व्यापक मानवतावादी आदर्श समाज का पक्षपाती है। अतः राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए और इसे मार्ग पर ले जाने के लिए राष्ट्र के विकास में पूर्ण योगदान प्रदान करना चाहिए। क्योंकि इसके पस वह विचार की शक्ति है जो राष्ट्र का भाग्य बदलने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। ❍❍

राष्ट्र निर्माण एवं आर्य समाज

रविन्द्र सेठ, प्रधान : आर्यसमाज, नोएडा

राष्ट्र भाषा हिंदी के कविवर प्रकृति के सुंदर चितेरे सुमित्रानंदन पंत ने मानव को सबसे सुंदरतम कहकर इसे इस चराचर जगत में परमेश्वर की सर्वोत्कृष्ट एवं अद्वितीय रचना बताया है। मानव अथवा व्यक्ति को परिवार की एक इकाई माना जाता है तथा व्यक्तियों के समूह को परिवार कहा जाता है। विभिन्न परिवारों के समूह को एक जगह रहने पर गांव की संज्ञा प्रदान की जाती है। बड़ी जनसंख्या वाले स्थानों को कस्बा या नगर के नाम से उच्चारित किया जाता है जो घरों में तथा विभिन्न-विभिन्न स्थानों पर रहकर अपना जीवन यापन करते हैं। और भिन्न-भिन्न परिस्थितियों एवं जलवायु आदि के आधार पर वे विभिन्न नामों से जाने जाते हैं।

हमारा राष्ट्र भारत जलवायु आदि की दृष्टि से सब राष्ट्रों में श्रेष्ठ राष्ट्र माना जाता है। जो पूर्वकाल में इस पूरे विश्व का गुरु माना जाता था और हमारे पूर्वजों ने पूरे विश्व को 'वसुधैव कुटुम्बकम' कहकर पुकारा था। आज विज्ञान अपनी प्रगति के यौवन काल में विचरण कर रहा है, परंतु पुनश्च पूरा विश्व अशांति से त्रस्त है। चहुंओर अथाह अंधेरा व अन्याय का साम्राज्य छाया प्रतीत होता है। आर्थिक प्रगति और अनेक प्रकार की नवीन सुख-सुविधाओं की प्राप्ति पर भी मानव अपने आपको असमर्थ एवं अज्ञानी की भांति ठगा हुआ सा महसूस कर रहा है।

अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा हम अपने राष्ट्र को ही देखें कि स्वतंत्रता प्राप्ति के सत्तर वर्षों के पश्चात भी हम अभी भी पूर्णरूपेण अंधविश्वास एवं पाखंड के मार्ग को अपनाए हुए हैं। आपस में एक दूसरे से विद्रोह तथा हिंसा पथ पर अग्रसर हैं। स्वदेश प्रेम की भावना अभी भी हमारे से कोसों दूर है, क्योंकि हमारी कथनी और करनी में बहुत अंतर है। राष्ट्र को पीछे धकेलने में जातिवाद व्यवस्था का एक बहुत बड़ा हाथ है। विभिन्न संतों, महात्माओं, आचार्यों और विद्वानों के प्रवचन भी सुनने को बहुत मिलते हैं, जो व्यक्तियों में कुछ संस्कार पैदा कर उन्हें पतित होने से रोकते हैं। किंतु राजनैतिक पार्टियां जातीयता के बंध को मजबूत करने में कोई कसर नहीं छोड़ पा रही हैं। विद्वनों को पता होगा कि भारत को आजादी दिलाने में लगभग 70 प्रतिशत आंदोलनकारी आर्य समाजी थे। आर्य समाज कोई विशेष धर्माधारित संस्था नहीं है। यह एक आर्य संगठन जिसका अर्थ श्रेष्ठ व्यक्तियों का समूह जिसका उद्देश्य स्वयं सदाचारी श्रेष्ठ बनना और दूसरों को भी श्रेष्ठ बनाना और सत् मार्ग पर चलाना है।

आर्यसमाज ने समाज व राष्ट्र की उन्नति के लिए अथक प्रयास किये हैं जैसे आर्यसमाजों, गुरुजनों, डीएवी स्कूलों तथा वृद्धाश्रमों की स्थापना कर समाज का उद्धार किया है। आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' को पूर्ण रूप से कार्यान्वित करना आज अतिआवश्यक है क्योंकि अधिक से अधिक नवयुवक, नवयुवतियों, बालक और बालिकाओं को मानव जाति के कल्याण के लिए आर्य समाज की धारा में जोड़ने का प्रयास करें। ❍❍

शत् शत् प्रणाम...

हे महा मानव! हे ऋषि महान्! शत् शत् प्रणाम, शत्...
हे अमृत पुत्र! हे शौर्यवान! शत् शत् प्रणाम, शत्...
हे ब्रह्मचारी योगी सुजान! शत् शत् प्रणाम, शत्...
हे शिष्य गुरु के प्रतिभावान्! शत् शत् प्रणाम, शत्...
हे धर्मरक्षक, वेदों के प्राण! शत् शत् प्रणाम, शत्...
हे ऋत् पालक! हे सत्यवान! शत् शत् प्रणाम, शत्...
हे अहिन्सावादी धैर्यवान! शत् शत् प्रणाम, शत्...
हे शांतिदूत! हे क्रांतिवान! शत् शत् प्रणाम, शत्...
हे निर्भय संत! हे तेजवान! शत् शत् प्रणाम, शत्...
हे यज्ञ प्रकाश हे ज्ञान वान! शत् शत् प्रणाम, शत्...
हे स्वतंत्रता के सूत्रमान! शत् शत् प्रणाम, शत्...
हे ज्योति स्वरूप! हे प्रकाशवान! शत् शत् प्रणाम, शत्...

ब्रह्मचर्य की शक्ति

सरदार विक्रम सिंह एक बार मिलने आए स्वामी जी से
ब्रह्मचर्य में अद्भुत शक्ति है सुनते आए स्वामी जी से
स्वामी जी इन बातों पर आपकी मुझे नहीं होता विश्वास
हैं स्वयं आप भी ब्रह्मचारी पर बल प्रतीत नहीं होता खास
मौन रहे स्वामी जी उस समय, सोचा मौके पर बतलाऊंगा
ब्रह्मचर्य का बल अवश्य इन्हें, सिद्ध करके दिखलाऊंगा
प्रस्थान के लिए विक्रम सिंह बग्घी में अपनी हुए सवार
बग्घी टस से मस न हुई प्रयत्न सभी हो गए बेकार
पीछे मुड़कर देखा तो थे स्वामी जी पहिया पकड़े हुए
घोड़े आगे बढ़ते कैसे ब्रह्मचर्य के बल में जकड़े हुए
सरदार हो गए शर्मिंदा अद्भुत शक्ति को प्रणाम किया
स्वामी जी मुस्करा दिए और बग्घी का पहिया छोड़ दिया।

बैलों पर दया

एक अवसर पर स्वामी जी ने दृश्य सड़क पर देखा ये
बैलगाड़ी गरीब किसान की फंसी हुई थी दलदल में
किसान लगा बैलों को पीटने किया प्रयत्न बहुत भारी
पर कीचड़ से बाहर न आई, भरी माल से थी गाड़ी
ज्यों ही देखा स्वामी जी ने बैलों को खोला अलग किया
स्वयं अकेले खींच के गाड़ी दलदल से बाहर खड़ा किया

❍❍ **विनोद कुमार गुप्त**

वेद और धर्म

डा. दीवानचन्द, डी.लिट.

हमारे साहित्य में जो स्थान वेद का है, वह अन्य किसी ग्रंथ का नहीं। विश्व भर के साहित्य में भी न केवल प्राचीनता, प्रत्युत सृष्टि विज्ञान की दृष्टि से भी वेद का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय दर्शन मुक्त कंठ से वेद का प्रमाण्य स्वीकार करते हैं और स्मृतियां भी वेद को आदेश और उपदेश के लिए मूर्धन्य स्थान देती हैं। मनु की दृष्टि में वेद सनातन चक्षु है। उसमें जो कुछ कहा गया है, वही धर्म है। उसके विपरीत आचरण करना अधर्म है।

गीता शास्त्र के रूप में विधि-निषेध की मर्यादा के लिए वेद की ओर ही संकेत करती है। वेद एक प्रकार से हमारे निखिल ज्ञान-विज्ञान का स्रोत है। उसमें समस्त विद्याओं के बीज हैं। ऐसा परम प्रमाण रूप वेद धर्म के संबंध में क्या कहता है, इसे समझ लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

वेद ऋक् यत्र अर्थवशेन पाद व्यवस्था। गीतिषु सामाख्या। शेषे यजुः शब्द। निगदो वा चतुर्थम् स्यात् धर्म विशेषात्।।

ऋग्वेद में अर्थ की अपेक्षा से पाद-व्यवस्था है। अर्थात् यह गायत्री, त्रिष्टुप, जगती आदि छंदों में आबद्ध है। ऋग्वेद की ऋचाओं को जब संगीत की तानों में बांधा जाता है, तब उसकी संज्ञा साम हो जाती है। शेष अर्थात् बचे हुए कर्मकांड के मंत्र जो कुछ पद्य में हैं और कुछ गद्य में, यजु कहलाते हैं। जिन मंत्रों में विशेष धर्मों में वर्णन है, उनकी संज्ञा निगद अर्थात् अथर्व है। इन मंत्रों में धर्म शब्द का प्रयोग कई स्थानों पर हुआ है। धर्म में धृ धातु है जिसका अर्थ है धारण करना। अतः जो वस्तु धारण करती है, भूत (प्राणी) और भुवन (लोक) दोनों प्रकार की प्रजा जिससे सत्तावान है, वह धर्म हैं। मंत्रों में जहां-जहां धर्म शब्द आया है, वहां-वहां उसके अंदर निहित यह धात्वर्थ विद्यमान है।

वेद में पूर्व तथा शाश्वत दो प्रकार के धर्म कहे गये हैं।

पूर्व या प्रथम धर्म- समिध्यमानः प्रथमानुधर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः। शोचिष्केशो घृत निर्णिक् पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान्। ऋ.3-17-1

विश्व भर के लिए वरणीय यह अग्नि प्रथम धर्मों के अनुसार प्रज्वलित की गई है और समिधा आदि के द्वारा भली भांति बढ़ रही है। इसके केश (ज्वालाएं) प्रदीप्त हैं। घी के द्वारा चमकी हुई यह पवित्र करने वाली सुंदर यज्ञाग्नि देवताओं के यजन के लिए है। मंत्रगत प्रथम धर्म का क्या अर्थ है ? इसे समझने के लिए नीचे लिखे मंत्र पर विचार करें-

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् 10-90-16 देवताओं के यज्ञ के द्वारा यज्ञ किया। वे प्रथम धर्म थे। ऐसा यज्ञ करके ये देव महिमा से सम्पन्न हुए और उस नाक लोक के निवासी बने, जहां पहले के साध्य और देव विद्यमान थे।

नीचे लिखे मंत्र में भी प्रथम धर्म का वर्णन है- वाज्यसि वाजिनेता सुवेनीः सुवितः स्तोमं सुवितो दिवं गाः। सुवितो धर्म प्रथमानु सत्या सुवितो देवान् त्वंसुवितोऽनुपत्म। 10-56-3

तुम बलवान हो। तुम अपने बल से सुंदर हो। तुम्हारा स्तोम सुंदर है। तुम सुंदर देवलोक को जाओ। तुमने सुंदर प्रथम धर्म का पालन किया है। तुम सुंदर देवों को और सत्य को प्राप्त करो।

इन मंत्रों में प्रथम धर्म का अर्थ वे सूक्ष्म नियम हैं जो स्थूल द्रव्यमय यज्ञ से पहले क्रियाशील थे। सृष्टि की रचना में सूक्ष्म से स्थूल की ओर आने का नियम है। यज्ञ दोनों ही स्थानों पर है, परंतु प्रथम धर्म में यज्ञ से यज्ञ होता है, द्वितीय में हवि आदि स्थूल सामग्री द्वारा। दोनों के मूल में सर्वहुत यज्ञ पुरुष है और जो देव सृष्टि-रचना में भाग लेते हैं, वे उसी का अनुसरण करते हैं। प्रथम धर्म में इस आधार पर हम भाव-यज्ञ, रचना यज्ञ और ज्ञान यज्ञ की गणना करेंगे। कालयज्ञ की ओर भी पुरुष सूक्त ने संकेत किया है जिसमें बसंत को घी, ग्रीष्म को ईंधन और शरद को हवि का रूप दिया गया

ऋग्वेद में अर्थ की अपेक्षा से पाद-व्यवस्था है। अर्थात् यह गायत्री, त्रिष्टुप, जगती आदि छंदों में आबद्ध है। ऋग्वेद की ऋचाओं को जब संगीत की तानों में बांधा जाता है, तब उसकी संज्ञा साम हो जाती है। शेष अर्थात् बचे हुए कर्मकांड के मंत्र जो कुछ पद्य में हैं और कुछ गद्य में, यजु कहलाते हैं। जिन मंत्रों में विशेष धर्मों में वर्णन है, उनकी संज्ञा निगद अर्थात् अथर्व है।

इन मंत्रों में धर्मका शब्द का प्रयोग कई स्थानों पर हुआ है। धर्म में धृ धातु है जिसका अर्थ है धारण करना। अतः जो वस्तु धारण करती है, भूत (प्राणी) और भुवन (लोक) दोनों प्रकार की प्रजा जिससे सत्तावान है, वह धर्म हैं। मंत्रों में जहां-जहां धर्म शब्द आया है, वहां-वहां उसके अंदर निहित यह धात्वर्थ विद्यमान है।

वेद में पूर्व तथा शाश्वत दो प्रकार के धर्म कहे गये हैं। पूर्व या प्रथम धर्म- समिध्यमानः प्रथमानुधर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः। शोचिष्केशो घृत निर्णिक् पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान्। ऋ.3-17-1

विश्व भर के लिए वरणीय यह अग्नि प्रथम धर्मों के अनुसार प्रज्वलित की गई है और समिधा आदि के द्वारा भली भांति बढ़ रही है। इसके केश (ज्वालाएं) प्रदीप्त हैं। घी के द्वारा चमकी हुई यह पवित्र करने वाली सुंदर यज्ञाग्नि देवताओं के यजन के लिए है।

मंत्रगत प्रथम धर्म का क्या अर्थ है? इसे समझने के लिए नीचे लिखे मंत्र पर विचार करें- यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् 10-90-16 देवताओं के यज्ञ के द्वारा यज्ञ किया।

है। जब सृष्टि बन जाती है, तो सूर्य, चंद्र आदि साकार प्राकृत देव भी उसी प्रथम धर्म का अनुसरण करते हुए यज्ञकार्य में संलग्न हो जाते हैं और प्राणियों के शरीरों में अपने अंशों द्वारा अवतरित होकर यज्ञ के उसी स्वरूप को संचालित करने लगते हैं।

नीचे लिखे मंत्र में सनातन अथवा शाश्वत धर्मों का वर्णन है-

वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे। अग्निर्हि देवां अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत्। 3-3-1

धारण करने वाले मार्गों में जाने के लिए अत्यंत गतिशील वैश्वानर के लिए रणमीय स्तोत्र गाये जा रहे हैं। यह अमृताग्नि वैश्वानर देवों की सेवा करता है। इसीलिए सनातन धर्म दूषित नहीं हो पाते। वे ज्यों के त्यों निर्मल बने रहते हैं।

प्रथम धर्म ही शाश्वत धर्म का रूप धारण कर लेते हैं। पूर्वकाल में जिन धारक नियमों का प्रचार था, वे आगे चलकर परम्परा का निर्माण करते थे। उनकी एक श्रृंखला चल पड़ती है। प्रथम धर्म के पालक देव थे। परंपरा में श्रृंखला की एक-एक कड़ी बने हुए जो याजक इन धर्मों को आगे बढ़ाते हैं, वे मानों उन्हें जीवंत रूप प्रदान करते हैं। सर्वज्ञ एवं सर्व व्याप्त प्रभु अपनी रचना में इस श्रृंखला को समाप्त नहीं होने देते। इसीलिए ये धर्म शाश्वत कहलाते हैं। प्रलय में समग्र रचना ही प्रभु में लीन हो जाती है। यज्ञ का कार्य प्रत्यक्ष से परोक्ष हो जाता है और किसी अन्य सृष्टि में वह प्रत्यक्ष एवं अविर्भूत हो उठता है।

प्रलय के पश्चात यज्ञ का वही रूप पुन: चल पड़ता है वेद ने अग्नि को सृष्टि रूपी यज्ञ का होता कहा है। वेद के आधार पर महर्षि यास्क ने अग्नि के तीन रूप माने हैं- मित्र, वरुण और अग्नि। मित्र अर्थात् सूर्य द्यौ स्थानीय है। वरुण अर्थात् विद्युत अंतरिक्ष स्थानीय है।

अग्नि पृथ्वी स्थानीय है। रचना में सूर्य और विद्युत पार्थिव अग्नि के पूर्वज हैं। प्रत्येक संतति अपने पूर्वजों के धर्म का अनुकरण करती है। परम्परा का निर्माण इसी पद्धति पर होता है और धर्म का रूप अग्रसर होता रहता है। नीचे लिखे मंत्रमें इसी तथ्य

का प्रतिपादन हुआ है-

यस्त्वद् होता पूर्वों अग्ने यजीयान् द्विजा च सत्ता स्वधया च शंभु:। तस्यानु धर्म प्रयजा चिकित्वो अथानोधा देववीतौ। 3-17-5

हे अग्नि। तुमसे जो पूर्व का होता है और जो दो प्रकार की सत्ताओं में अपनी शक्ति के साथ कल्याणकारी रूप में वर्तमान है, उसी के धर्म का अनुसरण करते हुए तुम यज्ञ करो। तुम विद्वान हो, दिव्यता के विशिष्ट पथ में हमारे अध्वर को धारण करो। अग्नि का पूर्वज सूर्य यज्ञ कर रहा है। यही उसका धर्म है। इस धर्म से वह कभी विचलित नहीं होता।

पुरुषसूक्त में उसे देवताओं का अग्रज, पुरोहित और इसीलिए अपनो के लिए तपने वाला कहा गया है। उसे ब्राह्मीकान्ति, भर्ग अथवा प्रकाश इसी आधार पर प्राप्त होता है। अग्रज यदि इस धर्म का पालन नहीं करेगा, तो वह अपनी प्रतिष्ठा तथा सत्ता से हाथ धो बैठेगा। सूर्य के उपरांत अंतरिक्ष स्थित विद्युत भी इसी यज्ञकार्य को सम्पादित करती है। पार्थिव अग्नि भी इसी प्रकार के यज्ञ का होता बनता है।

सूर्य के धर्म का वर्णन नीचे लिखे मंत्र में है- ते हि द्यावा पृथ्वी विश्व शंभुव ऋतावरी रजसो धारयत् कवी। सुजन्मनी धिषणे अंतरीयते देवो धर्मणा सूर्य: शुचि:। 1-160-1

पवित्र और दिव्यगुण सम्पन्न सूर्य धर्म के द्वारा द्यावा आर पृथ्वी के बीच में विश्व को शांति देने वाले लोकों को धारण करता हुआ चल रहा है।

इस मंत्र से भी सूर्य पर घटाया जा सकता है- मंत्र में इन्द्र शब्द आया है जिसके कई अर्थ हैं। इन्द्र मन है। इन्द्र आत्मा है। इन्द्र सूर्य भी है। गणित में जैसे अ कई संख्याओं का वाचक है, वैसे ही वेद के इन्द्र आदि शब्द कई अर्थों के वाचक हैं-

इन्द्र ऋभुमान् वाजवान् मत्स्वेह नोऽस्मिन्त्सवने शच्या पुरुष्टुत। इमानि तुभ्यं स्वसराणि येमिरे व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभि:। 3-60-6

हे इन्द्र! हे सूर्य! तुम गतिशील हो, बलवान हो। हमारे इस यज्ञ में तुम अपनी शक्ति (प्रभा) के साथ आकर आनंद प्राप्त करो। मानव जिन यज्ञों की रचना करता है, वे सूर्य तक पहुंचते हैं। हमारे इन यज्ञों द्वारा सूर्य प्रसन्न होता है और हमको भी प्रसन्न करता है। भगवद्गीता के शब्दों में यज्ञ द्वारा हम देवों को भावित करते हैं और बदले में देव हमें भावित करते हैं।

सूर्य के व्रत अर्थात् धर्म के अनुसार ही वायु, पृथ्वी आदि देवों के व्रत भी चलते हैं। जो मानव इन व्रतों और धर्मों का पालन करते हैं वे मानों सूर्य की ओर जा रहे हैं। देवताओं के व्रत अपने आप चलते हैं उन्हें कोई निर्देश या प्रेरणा नहीं देता। मनुष्यों को निर्देशों की आवश्यकता पड़ती है। पर जो इन निर्देशों के पालन में निष्ठा निष्ठापूर्वक लग जाते हैं, उनके अंदर दिव्यता का संचार असंदिग्ध रूप में होने लगता है।

(शेष अगले अंक में...)

OO

त्रिफला चूर्ण

त्रिफला जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है तीन फलों से युक्त औषधि है। यह औषधि विभिन्न अनुपानों से विभिन्न ऋतुओं में विभिन्न रोगों में समान रूप से कार्य करती है और विलक्षण परिणाम देती है। इस औषधि में तीन घटक मुख्य माने गये हैं- प्रथम घटक हरीतिकी है जिसको जनसाधारण भाषा में हरड़ कहा जाता है, द्वितीय घटक विभीतिकी है जिसको आम भाषा में बहेड़ा कहा जाता है तथा तीसरा घटक आमलकी है जिसको जनसाधारण की भाषा में आमला कहा जाता है।

आयुर्वेद का एक मुख्य ग्रंथ निघन्टु है। इस औषधि के निर्माण में एक भाग हरीतिकी, दो भाग विभीतिकी तथा चार भाग आंवले को प्रयोग किया जाता है। इन तीनों घटकों को भली भांति साफ करके सुखा कर कूट करके चूर्ण बना कर पकड़ छन्न लिया जाता है तथा नित्यप्रति प्रयोग में लाया जाता है।

आयुर्वेद में आमला को रसायन कहा गया है। ऐसा माना जाता है कि इसके निरंतर प्रयोग से मनुष्य कभी भी रोगी नहीं होता है तथा उसको बुढ़ापा कभी नहीं आता है महर्षि च्यवन ऋषि ने आंवले का प्रयोग करके ही अपने को चिरकाल तक युवा बनाये रखा था अपने को चिरकाल तक युवा बनाये रखने के लिए ही उन्होंने एक अवलेह तैयार किया था जिसको च्यवनप्राश कहा जाता है। मात्र आंवला ही च्यवनप्राश का मुख्य घटक है।

इसके विषय में ऐसा माना जाता है कि आज भी यदि यह, इसमें प्रयोग होने वाले समस्त घटकों सहित, विधिपूर्वक तैयार किया जाये और निरंतर प्रयोग किया जाये तो मनुष्य कभी रोगी नहीं होता है, चिरकाल तक युवा बना रहता है और अपनी पूर्ण आयु को प्राप्त होता है।

आयुर्वेद शास्त्र में माना गया है कि त्रिफला एक रसायन औषधि है। इसके नियम पूर्वक नित्यप्रति ऋतु अनुपान अनुसार प्रयोग करने से मनुष्य आजीवन निरोगी बना रहता है।

आयुर्वेद शास्त्र कहता है कि-

1. शरद ऋतु में इसको मिश्री के साथ खाया जाता है।
2. हेमंत ऋतु में सोंठ के साथ प्रयोग किया जाता है।
3. शिशिर ऋतु में छोटी पीपल के साथ प्रयोग किया जाता है।
4. वसंत ऋतु में शहद के साथ प्रयोग किया जाता है।
5. ग्रीष्म ऋतु में गुड़ के साथ प्रयोग किया जाता है।
6. वर्षा काल में सैंधा नमक के साथ प्रयोग किया जाता है।

त्रिफला चूर्ण का नित्य प्रति सेवन करने से शोथ, प्रमेह, विषमज्वर, कफ, पित्त व कुष्ठ आदि रोग जड़ से मिट जाते हैं। बल वीर्य नित्य प्रति वर्धित होता है। मंदाग्नि दीप्त हो जाती है, अपचन नष्ट हो जाता है तथा मनुष्य निरोगी यह कर अपनी पूर्ण आयु को प्राप्त होता है। रात्रिकाल में शहद या घी के साथ सेवन करने से समस्त नेत्ररोग दूर हो जाते हैं।

सौजन्य से : अरविन्द कुमार मेहता

हर प्रकार के दर्द के निवारण की दवा

1. तिल के ताजे 2-3 फूल खाने से आंखों का दर्द दूर होता है।
2. अखरोट के तेल की मालिश करने से हाथ-पैर की ऐंठन समाप्त होती है।
3. दो ग्राम ईसबगोल पानी के साथ खीर की तरह मिस्री डालकर खाएं, पेचिश ठीक हो जायेगी।
4. मोतियाबिन्द की प्रारम्भिक अवस्था में शहद को सलाई द्वारा आंखों में लगाने से मोतिया का बढ़ना रुक जाता है।
5. पपीते के नित्य सेवन से बवासीर और कब्ज के पुराने रोग से छुटकारा मिलता है।
6. मसूढ़े में दर्द होने पर प्याज टुकड़ा रखने से दर्द दूर होता है।
7. प्रातः भूखे पेट तीन-चार अखरोट की गिरी खाने से घुटनों का दर्द दूर होता है।
8. बालतोड़ के स्थान पर मेंहदी का लेप करने से आराम मिलता है।
9. जले हुए अंग पर अरण्ड के पत्ते लगाने से आराम मिलता है।
10. नींबू के रस में शहद और पानी मिलाकर पीने से चक्कर आने बंद होते हैं।
11. मेथी का चूर्ण पानी को साथ लेते रहने से गठिया रोग में लाभ होता है।
12. तिल और महुआ बांधने से हड्डी की मोच ठीक होती है।
13. नींबू के रस का लगातार प्रयोग करने से आंखों की रोशनी बढ़ती है।
14. हैजे में प्याज का रस गुनगुना करके पिलाना लाभप्रद रहता है।
15. नींबू का रस अथवा आम की गुठली के चूर्ण को पानी में मिलाकर उसे शरीर पर लगाकर स्नान करने से घमौरिया मिटती हैं।
16. सिर पर नींबू का रस और सरसों का तेल समभाग में मिलाकर लगाने से और बाद में दही रगड़कर धोने से कुछ ही दिनों में सिर से फुंसियां एवं खुजली का दारूणक रोक मिटता है।
17. एक से दो ग्राम सोंठ का पाउडर 2 से 10 ग्राम शहद के साथ देने से दस्त एवं उल्टी में लाभ होता है।
18. नकसीर के रोगों को ताजी धनिया का रस सुंघाने से तथा उसकी हरी पत्तियां पीसकर सिर पर लेप करने से गर्मी के कारण होने वाली नकसीर में लाभ होता है।

समाचार दर्पण

- श्रावणी उपाकर्म के अवसर पर दिनांक 05/08/2017 दिन शनिवार को प्रातः 8:00 बजे आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार जी के ब्रह्मत्व में यज्ञ सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर आर्यजगत के सुप्रसिद्ध विद्वान श्री प्रणव प्रकाश शास्त्री जी ने यज्ञ के संबंध में विस्तार से अपने विचार व्यक्त करते हुये उपस्थित जनों को यज्ञ के प्रति जागरूक किया और यज्ञ करने की प्रेरणा दी। भजनोपदेशक आचार्य शंकर मित्र आर्य विद्यालंकार ने अपने ईश्वर भक्ति भजनों के माध्यम से जन मानस को आनन्द प्रदान किया। यज्ञ के अवसर पर यजमान श्री कुलवीर भसीन एवं श्रीमती मधु भसीन, संस्था के प्रधान श्री रविन्द्र सेठ, महामंत्री आर्य कै. अशोक गुलाटी, उपप्रधान श्री विजेन्द्र कठपालिया, माता लक्ष्मी सिन्हा, श्रीमती गायत्री मीना प्रधाना, माता ओमवती गुप्ता आदि धर्म प्रेमी सज्जनों और गुरुकुल के अध्यापक- श्री मोहन प्रसाद आर्य, श्री ओमकार शास्त्री, श्री विक्रम आर्य, वेदपाठी-श्री नीरज आर्य एवं श्री दीपक आर्य तथा गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने भाग लिया। सांयकालीन वेला में आचार्य शंकरमित्र आर्य ने ईश्वर भक्ति के गीतों का श्रवण कराया। मुख्यवक्ता आचार्य श्री प्रणव प्रकाश शास्त्री जी ने आध्यात्मिक जीवन का रहस्य बताया गया। कार्यक्रम का संयोजन संस्था के महामंत्री आर्य कै. अशोक गुलाटी ने किया।

- **श्रावणी पर्व तथा नव प्रविष्ट ब्रह्मचारियों का उपनयन संस्कार :** दिनांक 06-08-2017 को श्रावणी पर्व तथा नव प्रविष्ट ब्रह्मचारियों का उपनयन संस्कार के अवसर प्रातः 7:30 बजे यज्ञ के साथ नवीन ब्रह्मचारियों का उपनयन संस्कार आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार जी के ब्रह्मत्व में सम्पन्न हुआ, जिसमें ब्र. के अभिभावक भी मौजूद रहे। इसके पश्चात् गुरुकुल के ही ब्रह्मचारियों के द्वारा रघु और कौत्स नाटक बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया तथा अन्य ब्रह्मचारियों ने अपने-आपने भजनों एवं संस्कृत, हिन्दी भाषणों से जनमानस को आनन्द का अनुभव कराया।

- भजनोपदेशक आचार्य शंकरमित्र विद्यालंकार ने महर्षि दयानन्द के उपकारों एवं यज्ञोपवीत के महत्व को अपने भजनों के माध्यम से बताया तथा मुख्य वक्ता श्री प्रणव प्रकाश शास्त्री जी ने भारत की ऐतिहासिक जानकारी देकर भारत के गौरव को बढाया। मुख्य अतिथि श्री पंकज सिंह विधायक नोएड़ा का भव्य स्वागत फूल-मालाओं गायत्री पटको से किया गया। मुख्य अतिथि जी ने अपने विचारों से ब्रह्मचारियों को विद्याध्यन की ओर जागरूक किया और राष्ट्र निर्माण की विधियां बताईं। संस्था के प्रधान श्री रविन्द्र सेठ जी ने सभी का धन्यवाद किया । इस अवसर पर प्रधान श्री रविन्द्र सेठ, महामंत्री आर्य कै. अशोक गुलाटी, उपप्रधान श्री विजेन्द्र कठपालिया, माता लक्ष्मी सिन्हा, श्रीमती गायत्री मीना, माता ओमवती गुप्ता आदि धर्म प्रेमी सज्जनों और गुरुकुल अध्यापक-श्री मोहन प्रसाद आर्य, श्री ओमकार शास्त्री, श्री विक्रम आर्य,श्री राकेश तिवारी, वेदपाठी-श्री नीरज आर्य एवं श्री दीपक आर्य तथा गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने भाग लिया।

- दिनांक 15/08/2017 को स्वतंत्रता दिवस व योगेश्वर श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर प्रातः 7:30 बजे राष्ट्र की उन्नति के लिये राष्ट्रभृत यज्ञ किया गया जिसमें राष्ट्र की उन्नति के लिये विशेष मंत्रों से आहुति प्रदान की गई व शहीद को भावपूर्ण नमन किया गया। उसके उपरान्त संस्था के प्रधान श्री रविन्द्र सेठ एवं मंत्री कै. श्री अशोक गुलाटी जी ने ध्वजारोहण किया गया है और राष्ट्रगान सभी ने गाया राष्ट्रीय प्रार्थना की गई। ध्वजारोहण के उपरान्त ब्रह्मचारियों ने देशभक्ति के गीत सुनाये और आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार जी ने श्री जन्म दिवस के उपलक्ष्य में गीता ज्ञान पर चर्चा करते हुए बताया कि योगेश्वर श्रीकृष्ण योगी और आदर्श पुरुष थे जिन लोगों ने उनके ऊपर माखन चोर, रास रचाने वाले, स्त्रियों के कपड़े चुराने वाले आदि लांछन लगाये जबकि योगेश्वर श्रीकृष्ण 5 हजार गायों के पालन-पोषण करने वाले थे तो माखन कैसे चुराते थे ये सब असत्य है। उनकी एक पत्नी रुक्मिणी थी। उन दोनों ने पुत्र की प्राप्ति के लिये 12 वर्ष तपस्या की जिसका नाम था-प्रद्युम्न। ऐसे महान योगी को लोगों ने न जाने क्या-क्या कह दिया। योगीराज राष्ट्र के हित के लिये ही दुर्योधन के पास गये थे जबकि वह जानते थे कि वह धूर्त है मानने वाला नहीं फिर राष्ट्र के लिये उन्होंने अपमान को सहन किया और महाभारत को रोकने का सम्पूर्ण प्रयास किया। लेकिन दुर्योधन की कुटिलता के कारण महाभारत का युद्ध नहीं टाला जा सका। आचार्य जी ने बताया कि वे राष्ट्र भक्त एवं महान योगी थे। इसके उपरान्त गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने अपने देशभक्ति गीतों व ओजस्वी भाषणों उपस्थित जनों को देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत किया। संस्था के महामंत्री आर्य कै. श्री अशोक गुलाटी ने देशभक्ति कविता से सभी को आनंदित किया। अन्त में संस्था के प्रधान श्री रविन्द्र जी ने स्वतंत्रता दिवस और श्रीकृष्ण जन्माष्टमी की शुभकामनाएं दीं।

'विश्ववारा संस्कृति' के नियम व सविनय निवेदन

1. यदि 'विश्ववारा संस्कृति' दिनांक 15 तक नहीं पहुंचती है तो आप प्रधान संपादक के नाम पत्र डालें। पत्र मिलते ही 'विश्ववारा संस्कृति' पुनः भेज दी जायेगी।

2. वार्षिक शुल्क तथा आजीवन शुल्क मनीआर्डर द्वारा आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा के नाम भेजें। वीपी रजिस्ट्री द्वारा नहीं भेजा जायेगा।

3. लेख संपादक 'विश्ववारा संस्कृति' के नाम भेजें, लेख छोटे, सरल, संक्षिप्त होने चाहिए तथा स्पष्ट, शुद्ध एवं सुंदर लेख कागज के एक ओर लिखे होने चाहिए।

4. 'विश्ववारा संस्कृति' में विज्ञापन भी दिये जाते हैं, परंतु विज्ञापन शुद्ध एवं वास्तविक वस्तु का ही दिया जायेगा।

5. यह 'विश्ववारा संस्कृति' पत्रिका समाज-सुधार की दृष्टि से मानव कल्याणार्थ निकाली जाती है। इसमें आपको धर्म, यज्ञ कर्म, समाज सुधार, देश व समाज की स्थिति, ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य, योगासन, सदाचार, संस्कार, नैतिकता, वैदिक विचार, शिक्षा आदि एवं अन्य ऐसे विषयों पर लेख पढ़ने को मिलेंगे।

6. 'विश्ववारा संस्कृति' के दस ग्राहक बनाने वाले सज्जन को एक वर्ष तक निःशुल्क 'विश्ववारा संस्कृति' भेजी जायेगी तथा पचास ग्राहक बनाने वाले सज्जन को दो वर्ष निःशुल्क पत्रिका भेजी जायेगी तथा उसका फोटो सहित जीवन-परिचय 'विश्ववारा संस्कृति' में निकाला जायेगा।

7. अन्य पत्र-पत्रिकाओं में पहले छपा हुआ लेख 'विश्ववारा संस्कृति' में नहीं छापा जायेगा।

8. अनाधिकृत रूप से लिए लेख, रचना, कविता के लिए प्रेषक ही उत्तरदायी होंगे।

आर्य कै. अशोक गुलाटी
प्रबंध संपादक
'विश्ववारा संस्कृति'
आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा, उप्र
संपर्क सूत्र : 0120-2505731, 4206693
9871798221, 9555779571
ई-मेल : info.aryasamajnoida33@gmail.com

हिन्दी के उन्नायक : स्वामी दयानंद सरस्वती

हिंदी की उन्नाति और विकास में स्वामी दयानंद सरस्वती का योगदान वरदान की तरह हिंदी को मिला। यह सही है कि उन्होंने अन्य हिंदी निर्माताओं की तरह एक सर्जक की भूमिका नहीं निभाई, हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में अपनी विपुल मौलिक सृजनात्मक संपदा हिंदी साहित्य को नहीं सौंपी; लेकिन एक सुधारक चिंतक और विचारक की भूमिका में उनके तेजस्वी और निर्भीक व्यक्तित्व ने अपने भाषणों और लेखनी से हिंदी भाषा को अभूतपूर्व शक्ति और सामर्थ्य दी। हिंदी के विकास के उस क्रम में जब उसका स्वरूप निश्चित नहीं हुआ था, जब वह संस्कृत और उर्दू से दबी हुई थी, उस समय स्वामीजी ने जनता के मानस में गहरे अंतःप्रवेश करने वाली भाषा को ढूंढ निकाला। व्यंग्य-विनोद से युक्त, कहावतों-मुहावरों से संपन्न उपयुक्त भाषा-शैली तलाश कर हिंदी गद्य को उन्होंने सहज, संप्रेषणीय और प्राणवान स्वरूप प्रदान किया। उनकी हिंदी सेवा और उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक व धार्मिक आंदालनों का प्रभाव तत्कालीन हिंदी साहित्य जगत पर ही नहीं बल्कि उनके निधन के कई वर्षों बाद रचे जाने वाले साहित्य पर भी पड़ा। हिंदी साहित्य के इतिहास में स्वामीजी के प्रभावकारी हस्तक्षेप को श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' की ये पंक्तियां बखूबी निर्धारित करती हैं- 'रीतिकाल के ठीक बाद वाले काल में हिंदीभाषी क्षेत्र में जो सबसे बड़ी सांस्कृतिक घटना घटी, वह थी स्वामी दयानंद का पवित्रतावादी प्रचार। इस पवित्रतावादी प्रचार से घबराकर द्विवेदीयुगीन कविगण नारी के कामिनी रूप से आंखें चुराने लगे। इस युग के कवियों को श्रृंगार की कविता लिखते समय यह प्रतीत होता था कि जैसे स्वामी दयानंद पास ही खड़े सब कुछ देख रहे हों। इस भय से छायावादी कवि भी प्रत्यक्ष नारी के बदले 'जूही की कली' अथवा 'विहंगनियों' का आश्रय लेकर अपने भावों का रेचन करने लगे।' **(शेष अगले अंक में)...**

श्रावणी के अवसर पर यज्ञ में आहूतियां प्रदान करते आर्यजन।

श्रावणी के अवसर पर आर्ष गुरुकुल के ब्रह्मचारियों द्वारा नाटक 'रघु अकौत्स' का मंचन किया गया, जिसे जनमानस द्वारा सराहा गया। नाटक में भाग लेने वाले ब्रह्मचारीगण।

आर्ष गुरुकुल नोएडा के ब्रह्मचारियों द्वारा संस्कृत भाषण प्रश्नोत्तरी। आचार्य डा. जयेंद्र कुमार प्रधानाचार्य द्वारा संयोजन।

श्रावणी पर्व के अवसर पर ब्रह्मचारियों के उपनयन संस्कार पर यज्ञ कराते हुए आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार, मोहन प्रसाद जी और श्रीमती गायत्री मीणा।

नवप्रविष्ट ब्रह्मचारियों द्वारा संयुक्त गीत गायन का प्रस्तुतिकरण।

कार्यक्रम काआनंद उठाते ब्रह्मचारीगण व अन्य महानुभाव

ब्रह्मचारियों के साथ डा. आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार, आर्य कै. अशोक गुलाटी व अन्य।

विश्ववारा संस्कृति

आर्य समाज, बी-69, सैक्टर-33, नोएड़ा (उ.प्र.) दूरभाष : 0120-2505731, 4206693